वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 59
ISBN 978-93-80353-21-0

नारी आलोक

(भाग-1)

– रचयित्री –
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी के 53वें जन्मदिवस के शुभ अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-
दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र. फोन नं.- (01233) 280184, 292943
Website : www.jambudweep.org
E-mail : ravindrajain@jambudweep.org

COURTESY–JAIN BOOK DEPOT
C/o Shri Nabhi Kumar Manav Kumar Jain
C-4, Opp. PVR Plaza, Cannaught Place, New Delhi-1
Ph.-011-23416101-02-03/Website : www.jainbookdepot.com

द्वितीय संस्करण	वीर निर्वाण संवत् 2536	मूल्य
2200 प्रतियाँ	ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या	40/-रु.
	12 जून 2010	

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

-: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :-
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

-: मार्गदर्शन :-
प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

-: निर्देशन :-
धर्मदिवाकर पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज

-: सम्पादक :-
कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण, सन् 1990-5000 प्रतियाँ

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन

एक कवि ने कहा है–

अंधकार है वहाँ, जहाँ आदित्य नहीं है।
निर्बल है वह देश, जहाँ साहित्य नहीं है।।

प्रिय पाठकों! कवि की ये दो पंक्तियाँ अक्षरशः सत्य हैं। सत् साहित्य के अभाव में व्यक्ति, समाज, देश अपने को शक्तिहीन अनुभव करता है।

प्राचीनकाल में बड़े-बड़े आचार्य, विद्वान्जन ग्रंथ रचना किया करते थे। पिछले 2500 वर्षों का इतिहास अगर देखा जाए, तो उसमें अनेक प्रकार का साहित्य रचा गया, जिसमें से आज भी अधिकांश साहित्य उपलब्ध है तथा जिसके माध्यम से हमें अपनी प्राचीन संस्कृति का बोध प्राप्त होता है।

वर्तमान समय में साहित्य के लेखन-प्रकाशन-पठन आदि की अधिक परम्परा देखी जा रही है और दिगम्बर जैन समाज में इस परम्परा को आगे बढ़ाया है परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने, उन्होंने बीसवीं शताब्दी में ग्रंथ लेखन करके 2500 वर्षों के इतिहास को नया आयाम दिया है, क्योंकि इन पिछले वर्षों में कोई भी शास्त्र किन्हीं जैन साध्वी द्वारा नहीं लिखा गया था।

पूज्य माताजी ने जब से अपनी लेखनी प्रारंभ की है तब से लेकर आज तक उन्होंने एक-दो नहीं अपितु 250 से भी अधिक ग्रंथों की रचना करके आबाल-गोपाल सभी के लिए ज्ञानवर्धक दिशाएँ प्रदान कर दी हैं।

प्रस्तुत पुस्तक ''नारी आलोक'' प्रथम भाग में पूज्य माताजी ने 25 लघु कथानकों के माध्यम से प्राचीन सती नारियों के सतीत्व का सुन्दर वर्णन किया है। इन कथानकों को पढ़कर आप सभी अपने हृदय में ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित करें, यही इसकी सार्थकता है।

प्रस्तावना

–ब्र. कु. सारिका जैन (संघस्थ)

कहा जाता है कि बच्चों को संस्कारित करने में सर्वाधिक भूमिका एक नारी अर्थात् माँ की होती है। 'नारी' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है–

न + अरि अर्थात् कोई भी शत्रु नहीं है जिसका, वह कहलाती है नारी। और भी नारी के बारे में अनेकों उक्तियाँ प्रसिद्ध हैं यथा–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।

अर्थात् जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं।

तथा–

नारी-नारी मत कहो, नारी नर की खान।
नारी से पैदा हुए, तीर्थंकर भगवान।।

प्राचीनकाल की सती नारियों का जीवन चरित्र आज इतिहास के रूप में हम सभी के लिए पठनीय बन गया है। सती द्रौपदी, सती सीता, मनोरमा, अंजना आदि न जाने कितनी नारियाँ ऐसी हैं, जिन्होंने अपने सतीत्व के प्रभाव से जिनशासन का मस्तक गौरव से ऊँचा कर दिया है।

वर्तमान में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी को ही देखिए, उन्होंने नारी होकर जितने कार्य किए हैं शायद पुरुषों के अन्दर भी इतनी शक्ति नहीं है। इनके बारे में किसी ने कहा है कि-

''ज्ञानमती माताजी नारी होकर इतने बड़े-बड़े कार्य कर रही हैं, यदि ये पुरुष होतीं तो न जाने क्या करतीं'। प्रस्तुत पुस्तक ''नारी आलोक'' के प्रथम भाग में पूज्य माताजी ने प्राचीन सती नारियों के जीवन चरित्र को रुचिकर ढंग से प्रस्तुत किया है इसमें 25 आलेखों में सर्वप्रथम अनादिनिधन अपराजित महामंत्र णमोकार की महिमा को बताया गया है कि इस मंत्र को जपने से क्या सुफल मिलता है तथा इसका अपमान करने से किन दुर्गतियों में जाना पड़ता है और णमोकार मंत्र के 35 व्रत करने की भी इसमें प्रेरणा प्रदान की गई है पुनः बताया गया है कि तराजू के एक पलड़े पर णमोकार मंत्र एवं दूसरे पलड़े पर सारे गुण रखने पर भी महामंत्र का पलड़ा ही भारी रहेगा, जैसा कि पूज्य माताजी ने णमोकार महामंत्र पूजन की जयमाला में भी इन भावों को संजोया है–

इक ओर तराजू पे, अखिल गुण को चढ़ाऊँ।
इक ओर महामंत्र अक्षरों को धराऊँ।।

इस मंत्र के पलड़े को उठा ना सके कोई।
महिमा अनन्त यह धरे ना इस सदृश कोई।।

आगे द्वितीय कथानक में रानी चेलना द्वारा जिनेन्द्र भक्ति का उदाहरण है कि कैसे उन्होंने राजा श्रेणिक को जैनधर्मी बना लिया तथा राजा श्रेणिक ने सम्यग्दर्शन के प्रभाव से सोलहकारण भावनाओं द्वारा अत्यन्त विशुद्धि को प्राप्त करके तीर्थंकर जैसी महान प्रकृति का बंध कर लिया। पुनः अगले आलेख में सती सुलोचना के जीवन की एक चमत्कारिक घटना का वर्णन किया है।

आगे ''तिर्यंचों में विवेक'' नामक आलेख में बताया है कि आज भले ही मनुष्यों में शील और व्यभिचार का विवेक लुप्त होता जा रहा है परन्तु पशुओं में इस प्रकार का विवेक अवश्यंभावी है।

''मुनि निन्दा का फल'' तो प्रायः सभी जैनबंधु जानते ही हैं इस आलेख में भी यही बताया गया है कि मुनि निंदा के फल से रानी को उसी भव में कुष्ठरोग हो गया, उसका शरीर दुर्गन्धियुक्त हो गया पुनः वह बहुत काल तक संसार में परिभ्रमण करती रही अतः इस प्रकरण से यही शिक्षा लेना है कि कभी भी दिगम्बर जैन साधु-संतों की निंदा न तो करेंगे, न सुनेंगे और न ही करने वालों की अनुमोदना करेंगे।

पुनः जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा का अपमान करने से मिलने वाले कुफल को बताया है कि रानी कनकोदरी ने पट्टरानी पद के अभिमानवश एवं सौत की ईर्ष्यावश चैत्यालय में विराजमान प्रतिमा को निकालकर बाईस घड़ी तक बावड़ी में फिंकवा दिया था, जिसके फलस्वरूप उसे आगे अंजना की पर्याय में बाईस वर्ष तक पति का वियोग सहन करना पड़ा।

इसी प्रकार आगे के आलेखों में अनेक महिमाशाली व्रतों में से लब्धि विधान व्रत की महिमा, कनक श्री का वैराग्य आदि को वर्णित करते हुए महासती चंदना के जीवन को दिगम्बर जैन आगम के अनुसार सुन्दरता से प्रस्तुत किया गया है।

पुनः अगले कथानक में नागश्री नामक कन्या द्वारा पंचाणुव्रत ग्रहण करने एवं पिता द्वारा नाराज होने पर व्रतों को वापस मुनि के पास देने की घटना का वर्णन है तथा मुनि श्री द्वारा नागश्री के पूर्वभव को बताने का भी रोमांचक प्रस्तुतीकरण है।

''क्या हम सभी तीर्थंकर बन सकते हैं?'' इस आलेख में पूज्य माताजी ने बताया है कि दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं को भाकर हम भी तीर्थंकर जैसे महानपद को अवश्यमेव प्राप्त कर सकते हैं। आगे ''वैयावृत्य'' नामक

कथानक के माध्यम से वैयावृत्ति की महिमा को बताया है जैसा कि कहा भी जाता है कि–

वैयावृत्ति करने में अपनी सर्वशक्ति लगा देनी चाहिए।

पुनः क्रम-क्रम से प्रियंगुसुन्दरी, पर्दाफाश कर दिया, अक्षय तृतीया, क्या मुनि रात्रि में बोल सकते हैं, तिरस्कार से सत्कार आदि आलेखों में उन-उन विषयों को सप्रमाण प्रस्तुत किया है पुनः बताया है कि बलि प्रथा का प्रारंभीकरण कब से हुआ है? अहिल्या की कथा, न्यायशास्त्र कसौटी के पत्थर हैं, इन आलेखों के पश्चात् ''क्या रावण कभी शीलवान था'' इस प्रकरण में रावण को महापुरुष बताते हुए उसके सदाचारी जीवन को बताया गया है कि उपरम्भा नामक स्त्री जब रावण के रूप में आसक्त हो गई तब किस प्रकार रावण ने परस्त्रीसेवन को पाप समझकर उपरम्भा को समझा-बुझाकर शांत किया। जहाँ तक सीताहरण की बात है तो इसे रावण के किन्हीं पूर्वजन्म के पापकर्म का उदय ही मानना पड़ेगा। फिर भी उसने अपने नियम की सुरक्षा करते हुए उसके साथ किसी प्रकार की जबर्दस्ती नहीं की।

आगे के आलेख में बालिकाओं के करने योग्य कर्तव्य बताये गये हैं पुनः सती द्रौपदी के सतीत्व का सुन्दर वर्णन किया है। यहाँ एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि जो लोग द्रौपदी को पंचभर्तारी कहते हैं उनके लिए जैन महाभारत में यह पंक्ति आई है कि ''द्रौपदी को पंचभर्तारी कहने वालों की जिव्हा के सौ-सौ टुकड़े हो जाएँ''। वास्तव में यह सोचने वाली बात है कि पाँच पति वाली स्त्री सती कैसे कहला सकती है? खैर....पुनः महारानी केकसी नामक आलेख में रावण, खरदूषण, विभीषण आदि की माता केकसी के जीवन का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार अनेक महान कथानकों को प्रस्तुत करने वाली यह पुस्तक सभी के लिए विशेष पठनीय है। पुस्तक के अंत में डॉ. ऊर्जिता जैन-मुम्बई द्वारा प्रचारित अहिंसक सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री के बारे में जानकारी प्रदान की गई है, जिसके माध्यम से आप अनजानी एवं अनचाही हिंसा से अपने आप को आसानी से बचा सकते हैं।

पुस्तक की लेखिका पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के चरणों में सविनय वंदामि करते हुए मैं अपनी लेखनी को यही विराम देती हूँ।

पुस्तक की रचयित्री, राष्ट्रगौरव, गणिनीप्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

भारत की वसुन्धरा सदैव से तपस्या, त्याग एवं संयम की भूमि रही है। भगवान ऋषभदेव, राम, महावीर की यह भूमि आज भी ऐसे महान व्यक्तित्वों से सुशोभित है कि जो अपने जीवन में ही ऐतिहासिक बन जाते हैं।

ऐसा ही एक महान व्यक्तित्व है– वर्तमान दिगम्बर जैन समाज की सबसे प्राचीन दीक्षित साध्वी-पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी। सन् 1934 में शरदपूर्णिमा के दिन जिला बाराबंकी (उ.प्र.) के टिकैतनगर ग्राम में माता मोहिनी एवं पिता श्री छोटेलाल जैन के दाम्पत्य जीवन के प्रथम पुष्प के रूप में कन्यारत्न 'मैना' का जन्म हुआ। छोटी-सी आयु से ही अपनी माँ की प्रेरणावश जैन ग्रंथों के स्वाध्याय द्वारा इस बालिका ने अपने वैराग्य को भलीभाँति दृढ़ कर लिया और 18 वर्ष की अल्प आयु में शरदपूर्णिमा के दिन ही परिवार के प्रबल विरोध के बावजूद भी आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत एवं गृहत्याग के कठिन नियम धारण कर लिये। सन् 1953 में श्री महावीर जी (राज.) अतिशय क्षेत्र पर आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से आपने क्षुल्लिका दीक्षा लेकर 'वीरमती' नाम प्राप्त किया। पुनः 1956 में बीसवीं सदी के प्रथम आचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टाधीश शिष्य आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज से माधोराजपुरा (राज.) में आपने आर्यिका दीक्षा लेकर 'ज्ञानमती' नाम प्राप्त किया। ज्ञान प्राप्ति हेतु अध्ययन-अध्यापन एवं स्वाध्याय के प्रति आपकी विशेष अभिरुचि देखकर ही गुरुवर ने आपको यह नाम प्रदान किया था। दीक्षा के प्रारंभिक वर्षों में आपने सर्वप्रथम संस्कृत व्याकरण एवं जैन आगम का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त किया तथा साथ ही अपनी लेखनी का शुभारंभ भी कर दिया।

57 वर्षों से साधनारत इन महान साध्वी ने अब तक लगभग 250 से भी अधिक ग्रंथों का सृजन किया है। संस्कृत, हिन्दी, प्राकृत, कन्नड़ इत्यादि भाषाओं की प्रकाण्ड विदुषी पूज्य माताजी की काव्य प्रतिभा भी अद्वितीय है। जिनेन्द्र भक्ति के रस से भरे हुए न जाने कितने ही पूजन-विधानों की रचना पूज्य माताजी ने अपनी लेखनी द्वारा की है। सन् 1995 में डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय (फैजाबाद) ने पूज्य माताजी की विराट ज्ञान साधना को देखकर जैन इतिहास में प्रथम बार किसी साध्वी को 'डी.लिट्.' की मानद उपाधि प्रदान की।

कर्मठता, दृढ़संकल्प, अनुशासन के साथ-साथ वात्सल्य की प्रतिबिम्ब पूज्य माताजी ने कौरवों-पाण्डवों की राजधानी हस्तिनापुर (मेरठ-उ.प्र.) में अपनी प्रेरणा से जैन भूगोल की अद्वितीय रचना-'जम्बूद्वीप' का निर्माण कराया है।

प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान कल्याणक भूमि-प्रयाग (इलाहाबाद) में 'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ' का भव्य निर्माण भी पूज्य माताजी की सृजनशक्ति का ही सुन्दर प्रतिफल है। इसी प्रकार भगवान महावीर जन्मभूमि-कुण्डलपुर (नालंदा) में नंद्यावर्त महल तीर्थ का भव्य निर्माण पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं ससंघ सानिध्य में मात्र 22 माह के अल्प अन्तराल

में हुआ है। भगवान महावीर के अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अनेकांत इत्यादि विश्वोपयोगी सिद्धान्तों की गूंज को समस्त विश्व में प्रसारित करने वाला भगवान महावीर जन्मभूमि पर स्थापित नंद्यावर्त महल परिसर सभी लोगों के लिए आकर्षण का विशेष केन्द्रबिन्दु सिद्ध हो रहा है।

2600 वर्ष पूर्व कुण्डलपुर (नालंदा) की जो धरती अहिंसा के अवतार भगवान महावीर के जन्मकल्याणक से महान उत्साह एवं हर्ष को प्राप्त हुई थी वह काल के थपेड़ों से भले ही विस्मृत जैसी हो गयी हो, परन्तु जैन समाज के श्रद्धालुओं का वहाँ जाना हमेशा से जारी रहा और अब पूज्य ज्ञानमती माताजी के महान उपकार स्वरूप यह जन्मभूमि पुनः इस प्रकार जगमगा उठी है कि आने वाला भविष्य सदैव इसकी चमक से प्रभावित रहेगा।

पूज्य माताजी की प्रेरणा से जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982) एवं भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार रथ (1998) का देशव्यापी प्रवर्तन सम्पन्न हुआ एवं कुण्डलपुर से प्रवर्तित भगवान महावीर ज्योति रथ (2003) का प्रवर्तन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ है। इन रथों के द्वारा सम्पूर्ण भारत में अहिंसामयी सिद्धान्तों की व्यापक प्रभावना हुई।

शैक्षणिक क्षेत्र में अनेकानेक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियाँ-सेमिनार इत्यादि पूज्य माताजी की प्रेरणा द्वारा समय-समय पर सम्पन्न हुए हैं। पूज्य माताजी के विराट व्यक्तित्व का अभिनंदन करने के लिए समाज ने उन्हें समय-समय पर युगप्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका, न्याय प्रभाकर, आर्यिकारत्न, गणिनीप्रमुख, युगनायिका, राष्ट्रगौरव, विश्वविभूति, ब्राह्मीदेवी, सिद्धान्तचक्रेश्वरी जैसी उपाधियों से सम्मानित करके स्वयं को गौरवान्वित अनुभव किया है। वर्तमान में महाराष्ट्र प्रान्त के मांगीतुंगी पर्वत पर विश्व की सबसे ऊँची 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा का निर्माण पूज्य माताजी की प्रेरणा से हो रहा है।

ब्रह्मचर्य एवं चारित्र के तेज को सर्वत्र बिखेरने वाली पूज्य ज्ञानमती माताजी भारतीय संस्कृति की महान धरोहर हैं, जिन्होंने 15 अप्रैल 2006 (वैशाख कृ. दूज) को अपनी आर्यिकादीक्षा के 50 वर्षों को पूर्ण किये और जैन समाज के इतिहास में प्रथम बार किसी आर्यिका का दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव राष्ट्रीय स्तर पर मनाया गया।

21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पूज्य माताजी की प्रेरणा से आयोजित विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का उद्घाटन भारत की प्रथम महिला राष्ट्रपति श्रीमतीप्रतिभा देवीसिंह पाटील के करकमलों से हुआ और सन् 2009 ''शांतिवर्ष'' के रूप में घोषित हुआ। राष्ट्रपति जी ने जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पधारकर पूज्य माताजी का आशीर्वाद प्राप्त किया।

दीर्घकालीन तपस्विनी ऐसी पूज्यनीया माताजी ने अपने जीवन के 75 वर्ष पूर्ण किए, जिसे सन् 2008 में राष्ट्रीय स्तर पर ''हीरक जयंती महोत्सव'' के रूप में मनाया गया। चतुर्मुखी प्रतिभा की धनी पूज्य माताजी के श्रीचरणों में भावभीना कोटिशः नमन है।

वास्तव में आज के कलिकाल में भी आध्यात्मिक ज्ञान, चारित्र, साधना एवं मोक्षपथ को साकार करने वाले गुरुओं का जितना अभिनंदन किया जाये, उतना कम है। जो बिना कुछ कहे अपनी मुद्रा द्वारा ही शांति, संयम, सदाचार का उपदेश देते हैं ऐसे साधु इस भारत वसुन्धरा की शान हैं और जो भी प्राणीगण परमसौभाग्य से उनके चरणों में आश्रय प्राप्त कर लेते हैं, वे भी अपने जीवन को सही अर्थों में सार्थक कर लेते हैं।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान का परिचय

-पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर

जिस हस्तिनापुर में इस संस्थान द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर कार्य कलाप चल रहे हैं, प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की पारणा, कौरव-पाण्डव की राजधानी, दर्शन प्रतिज्ञा में प्रसिद्ध मनोवती का इतिहास आदि पौराणिक कथानकों से जुड़ी वह हस्तिनापुर नगरी एक ऐतिहासिक एवं पौराणिक नगरी है। **सन् 1972** में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के नाम से दिल्ली में इस संस्था का जन्म हुआ।

सन् 1974 से हस्तिनापुर में निर्माण कार्य प्रारंभ किया गया और अब तक वहाँ अनेक भव्य रचनाएं, मंदिर, कमरे, फ्लैट, कोठियां, भोजनालय, टंकी आदि बन चुके हैं। निर्माण के अतिरिक्त संस्थान के द्वारा शिक्षा एवं धर्म प्रचार-प्रसार हेतु शिक्षण शिविर, सेमिनार, अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार, सम्मेलन आदि के आयोजन भी होते रहते हैं। पूज्य माताजी एवं आर्यिका श्री चंदनामती माताजी द्वारा लिखित चारों अनुयोगों एवं धर्मप्रभावना के समाचारों से सहित सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका का प्रकाशन **सन् 1974** से बराबर निर्बाध गति से चल रहा है। संस्थान के अंतर्गत ही **सन् 1972** में स्थापित वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला से **300** से भी अधिक ग्रंथ लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। यहां जम्बूद्वीप पुस्तकालय, णमोकार महामंत्र बैंक, गणिनी ज्ञानमती शोधपीठ आदि के द्वारा धार्मिक शैक्षणिक एवं पारमार्थिक कार्यक्रम चलते रहते हैं। सन् 1975 से प्रारंभ पंचकल्याणकों में अब तक अनेक पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएंएवं प्रति 5 वर्षों में होने वाले जम्बूद्वीप महामहोत्सव में से 4 महोत्सव हो चुके हैं। इस संस्थान द्वारा जहाँ पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् 1982 में दिल्ली से स्व. प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा उद्घाटित जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति रथ का 1045 दिनों तक सम्पूर्ण भारत में भ्रमण एवंहस्तिनापुर में उसकी अखण्ड स्थापना हुई, सन् 1998 में प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा उद्घाटित भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार द्वारा अहिंसामयी सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार हुआ। वहीं भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) से महामहिम राज्यपाल बिहार प्रान्त द्वारा प्रवर्तित **''भगवान महावीर ज्योति''** रथ के भारत भ्रमण से जनमानस भगवान महावीर के विषय में आगमसम्मत ज्ञान से परिचित हुआ है। जम्बूद्वीप स्थल पर समय-समय पर भव्य दीक्षाएं भी सम्पन्न हुई हैं। इसी संस्थान द्वारा दिल्ली के लालकिला मैदान में 4 फरवरी सन् 2000 को प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी द्वारा उद्घाटित ''भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव'' सम्पूर्ण देश एवं विदेशों में मनाया गया। जिसके अंतर्गत अनेक संगोष्ठियाँ, भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ निर्माण आदि कार्यक्रम हुए। सन् 2000-2001 में संस्थान द्वारा पूज्य माताजी की प्रेरणा से भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान भूमि प्रयाग-इलाहाबाद में बनारस हाइवे पर **''तीर्थंकर ऋषभदेव दीक्षातीर्थ''** का नवनिर्माण हुआ है तथा 6 अप्रैल सन् 2001 को ही प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा उद्घाटित राष्ट्रीय स्तर पर सम्पूर्ण

भारतवर्ष में मनाए जाने वाले भगवान महावीर 2600वाँ जन्मकल्याणक महोत्सव वर्ष में पूज्य माताजी द्वारा रचित ''विश्वशांति महावीर विधान'' का विराट आयोजन प्रथम राष्ट्रीय आयोजन के रूप में राजधानी दिल्ली के फिरोजशाह कोटला मैदान में अक्टूबर 2001 में सम्पन्न हुआ। उसी जन्मकल्याणक महोत्सव के अंतर्गत सन् 2003-2004 में संस्थान द्वारा पूज्य माताजी की प्रेरणा से भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर का विकास कार्य द्रुतगति से हुआ है। ''नंद्यावर्त महल'' नामक तीर्थ परिसर वहाँ का विशेष दर्शनीय स्थल पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र है।

कुण्डलपुर विकास संपन्न होने के पहले ही पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने आगामी वर्ष 2005 को ''भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव वर्ष'' के रूप में मनाने का सारे देश को आह्वान किया और प्रेरणा दी। तदुपरांत पूज्य माताजी ससंघ ने कुण्डलपुर से 14 नवम्बर 2004 को भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि बनारस के लिए विहार किया और पूज्य माताजी के सानिध्य में बनारस में भगवान पार्श्वनाथ की जन्मजयंती 6 जनवरी 2005 को इस पार्श्वनाथ महोत्सव वर्ष का जोर-शोर के साथ सारे देश की जनता के बीच उत्तरप्रदेश के लोक निर्माण मंत्री-श्री शिवपाल सिंह यादव एवं अन्य अतिथियों द्वारा उद्घाटन किया गया। इस महोत्सव वर्ष के अंतर्गत सर्वप्रथम लम्बे समय से प्रतीक्षित भगवान श्रेयांसनाथ की जन्मभूमि सिंहपुरी-सारनाथ में उनकी विशाल प्रतिमा का पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव भव्यता के साथ सम्पन्न हुआ। तदुपरांत टिकैतनगर में भगवान महावीर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में पधारे उत्तरप्रदेश के लोकप्रिय मुख्यमंत्री माननीय श्री मुलायम सिंह यादव ने भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा के समक्ष दीप प्रज्ज्वलित कर 'पार्श्वनाथ वर्ष' का शुभारंभ किया और भगवान पार्श्वनाथ की वह प्रतिमा ''पार्श्वनाथ दि. जैन इण्टर कालेज'' के परिसर में स्थापित की गई है। इसी शृंखला में सारे देश में 3 वर्ष तक भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव विविध आयोजनों के साथ मनाया गया, जिसका समापन भगवान पार्श्वनाथ की केवलज्ञान भूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तिखाल वाले बाबा के महामस्तकाभिषेकपूर्वक 4 जनवरी 2008 को हुआ।

21 दिसम्बर 2008 का दिवस संस्थान के लिए विशेष गौरवपूर्ण एवं ऐतिहासिक रहा, जब गणतंत्र भारत की महामहिम राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटिल पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का शुभाशीर्वाद लेने जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर पधारीं और विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का उद्घाटन किया।

इस प्रकार आप सबके सहयोग से संचालित हो रहा दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान अपनी चतुर्मुखी योजनाओं से समाज को सदैव लाभान्वित करता रहे यही मंगल कामना है।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के सहयोगी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत ''वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला'' की स्थापना सन् 1974 में हुई। तब से अब तक लाखों की संख्या में ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है और निरन्तर हो रहा है। ग्रंथमाला से पाठकों को ग्रन्थ कम कीमत में प्राप्त हो सकें, इस दृष्टि से ग्रन्थमाला में एक संरक्षक योजना अगस्त सन् 1990 से प्रारंभ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत निम्न महानुभाव अब तक संरक्षक बनकर अपना सहयोग प्रदान कर चुके हैं।

शिरोमणि संरक्षक

1. **श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खारी बावली, दिल्ली-6।**
2. **श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।**
3. **श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।**
4. **श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।**
5. **श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।**
6. **श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।**
7. **श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।**
8. **डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)**
9. **श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.**
10. **श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली**
11. **श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई**
12. **श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।**
13. **श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.**
14. **श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तरखंड)।**
15. **श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।**
16. **श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।**
17. **श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-4, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली।**

परम संरक्षक

1. **श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।**
2. **डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।**
3. **श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।**
4. **श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।**

5. **श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।**
6. **श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।**
7. **श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।**
8. **श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।**
9. **श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।**
10. **श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।**
11. **स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।**
12. **श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।**
13. **श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।**
14. **श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।**
15. **श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।**
16. **श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।**
17. **श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली**
18. **श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली**

संरक्षक

1. स्व. श्री अनन्तवीर्य जैन एवं स्व. श्रीमती आदर्श जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमार जैन, मेरठ।
2. श्रीमती राजूबाई मातेश्वरी श्री शिखर चन्द भाई देवेन्द्र कुमार लखमी चन्द जैन, सनावद (म.प्र.)।
3. श्री चिमनलाल चुन्नीलाल दोशी, कीका स्ट्रीट, मुम्बई।
4. श्रीमती अरुणाबेन मन्नूभाई कोटड़िया, सी.पी. टैंक रोड, मुम्बई।
5. श्रीमती ताराबेन चन्दूलाल दोशी, फ्रेन्च ब्रिज, मुम्बई।
6. श्री रतिलाल चुन्नीलाल दोशी, मुम्बई।
7. स्व. श्रीमती मथुराबाई खुशाल चन्द्र जैन, द्वारा-श्री रतन चन्द खुशाल चन्द्र गाँधी के सुपुत्र श्री धन्य कुमार, अशोक कुमार, शिरीश कुमार, धर्मराज गाँधी फलटन (महा.)।
8. श्री शांतिलाल खुशाल चन्द गाँधी, फलटन (सातारा) महा.।
9. श्री अनन्त लाल फूलचन्द फड़े, अकलूज (सोलापुर) महा.।
10. श्री हीरालाल माणिकलाल गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
11. श्री जयकुमार खुशालचंद गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
12. श्रीमती बदामी देवी मातेश्वरी श्री पदम कुमार जैन गंगवाल, कानपुर (उ.प्र.)।
13. श्रीमती कमलादेवी ध.प. स्व. श्री महेन्द्र कुमार जैन, घण्टे वाले हलवाई, दरियागंज, नई दिल्ली।
14. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री श्रवण कुमार जैन, चावड़ी बाजार, दिल्ली।
15. श्री मुकेश कुमार जैन, कटरा शहंशाही, चाँदनी चौक, दिल्ली।
16. श्री हुकमीचंद मांगीलाल शाह, धानमंडी, उदयपुर (राज.)

17. श्री किरण चन्द्र जैन, कटरा धूलियान, चाँदनी चौक, दिल्ली।
18. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री महावीर प्रसाद जैन इंजी. विवेक विहार, दिल्ली
19. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री अशोक कुमार जैन (खेकड़ा निवासी), बहराइच (उ.प्र.)।
20. श्रीमती लीलावती ध.प. श्री हरीश चन्द्र जैन, शकरपुर, दिल्ली।
21. श्री दुलीचन्द जैन, बाहुबली एन्कलेव, दिल्ली।
22. श्री रतिलाल केवलचन्द गाँधी की पुण्य स्मृति में, पापुलर परिवार, सूरत (गुज.)।
23. श्रीमती भंवरीदेवी ध.प. श्री सदासुख जैन पांड्या की समृति में इन्दर चन्द सुमेरमल जैन पांड्या शिलांग (मेघालय)।
24. श्रीमती सोहनीदेवी ध.प. श्री तनसुखराय सेठी, फैन्सी बाजार, गौहाटी (आसाम)।
25. श्रीमती धापूबाई ध.प. श्री कस्तूर चन्द जैन, रामगंज मण्डी (राज.)।
26. श्री मिट्ठनलाल चन्द्रभान जैन, कविनगर गाजियाबाद (उ.प्र.)।
27. श्रीमती शकुन्तलादेवी ध.प. श्री सुरेशचंद जैन (बर्तन वाले), खुड़बुड़ा मोहल्लका, देहरादून (उ.प्र.)।
28. श्री देवेन्द्र कुमार गुणवन्त कुमार टोंग्या, बड़नगर (म.प्र.)।
29. श्री दिगम्बर जैन समाज, तहसील फतेहपुर (बाराबंकी) उ.प्र.।
30. श्री मन्नालाल रामलाल जैन डूंगरवाला, भानपुरा (मन्दसौर) म.प्र.।
31. श्री इन्दर चन्द कैलाश चंद चौधरी, सनावद (म.प्र.)।
32. श्री प्रकाश चन्द अमोलक चन्द जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
33. स्व. श्री विमल चन्द जैन, रखबचन्द दसरथ सा, सनावद (म.प्र.)।
34. श्री आजाद कुमार जैन शाह (सनावद वाले), इन्दौर (म.प्र.)।
35. श्रीमती सुषमा जैन ध.प. श्री राकेश कुमार जैन, मवाना (मेरठ) उ.प्र.।
36. श्रीमती कुसुम जैन ध.प. श्री रमेशचन्द जैन, किशनपुरी, बागपत रोड, मेरठ।
37. श्रीमती किरण जैन ध.प. श्री पदम प्रसाद जैन एडवोकेट, मेरठ (उ.प्र.)।
38. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री जिनेन्द्रप्रसाद जैन ठेकेदार, टोडरमल रोड, नई दिल्ली।
39. श्रीमती क्षमादेवी जैन, मधुबन, दिल्ली।
40. श्रीमती कमलादेवी ध.प. श्री राजेन्द्र कुमार जैन टोडरका, ठाणे (महा.)।
41. श्री अजित प्रसाद जैन बब्बेजी, श्री राजकुमार श्रवण कुमार जैन, लखनऊ।
42. श्री प्रभा चन्द गोधा, 45 भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर-6 (राज.)।
43. श्री गोपीचन्द विपिन कुमार जैन, सरधना टैन्ट हाउस, गंजमंडी, सरधना।
44. श्रीमती रतनसुन्दरी देवी ध.प. श्री वीरचन्द जैन (चिकन वाले), चूड़ीवाली गली, चौक बाजार, लखनऊ।
45. डॉ. सुभाषचन्द जैन, रातानाड़ा क्लीनिक, रातानाड़ा बाजार, जोधपुर (राज.)।
46. श्री प्रमोद कुमार जैन (मुजफ्फरनगर वाले) 35 एच.वी.रोड, न्यू मार्केट, थरपकना, रांची (बिहार)।

47. श्री विजेन्द्र कुमार जैन, के.-1/20 मॉडल टाउन, दिल्ली।
48. श्री कैलाश चंद जैन, 45 भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर (राज.)।
49. श्री सुभाषचंद जैन, श्री दि. जैन पार्श्वनाथ चैत्यालय, 405 डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली।
50. श्री सुभाष चन्द जैन सर्राफ, टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.।
51. श्री चन्द्रसेन जैन, द्वारा-सुमेरचन्द, चन्द्रसेन जैन, सब्जी मण्डी, नहटौर (बिजनौर)।
52. श्री सुधीर कुमार जैन जे.ई., नन्द किशोर जैन, शारदा नहर खण्ड, शाहजहाँपुर।
53. श्री सुकुमालचंद जैन, मोती ट्रेडिंग कम्पनी, टी.आर. फुकन रोड, फैन्सी बाजार, गौहाटी।
54. श्री अनिल पुलकित सेठी, बी 1/122, फेज-2, अशोक विहार, दिल्ली-110052।
55. श्री चन्द्रमोहन बंसल, 11, पूसा रोड, करोलबाग, नई दिल्ली-5।
56. श्री गिरधर प्रसाद आमोद प्रसाद जैन, जैन वस्त्रालय, काली मार्केट, सिवान (बिहार)।
57. श्री सतीश चन्द जैन, 31 सिविल लाइन, म.नं.-10, सेक्टर-2, टाइप-5 झांसी।
58. श्री स्वरूप चन्द कासलीवाल, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
59. श्री हुलास चन्द सेठी, अयोध्या शुगर मिल्स, राजा का सहसपुर, बिलारी (उ.प्र.)।
60. श्रीमती किरण देवी जैन ध.प. श्री नरेन्द्र कुमार जैन, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
61. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री प्रवीण कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
62. श्री सूरजमल पुत्र श्री विनीत कुमार जैन, मोहल्ला गंजकटरा पूरणटरा पूरणजाट, जैन विला, मुरादाबाद (उ.प्र.)।
63. स्व. श्री शिखर चन्द जैन, 'टिम्बर कमीशन एजेन्ट', शंकरगंज, हापुड़ (उ.प्र.)।
64. श्रीमती राजेश्वरी जैन मातेश्वरी श्री राकेश जैन 31, सिविल लाईन, सीतापुर।
65. श्री राजकुमार जैन, मैसर्स रविदत्त प्रेमचन्द जैन बारदाने वाले, श्यामगंज, बरेली।
66. श्री बलवीर जैन, द्वारा-जानकी एक्सटेंशन रिफाइनरी, गाँधीगंज, शाहजहाँपुर।
67. श्री पन्नालाल सेठी, डीमापुर (नागालैंड)।
68. श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, ईदगाह कालोनी, आगरा (उ.प्र.)।
69. श्री पोखपाल जैन, द्वारा-नावेल्टी मेटल इंडिया, मानसिंह गेट, अलीगढ़ (उ.प्र.)।
70. श्रीमती रश्मि जैन ध.प. श्री विजय कुमार जैन, दरियागंज, नई दिल्ली।
71. श्रीमती विमला देवी ध.प. श्री प्रमोद कुमार जैन इंजी., शाहजहाँपुर (उ.प्र.)।
72. स्व. श्रीमती कैलाशवती जैन ध.प. श्री कैलाश चन्द जैन इंजी., तोपखाना बाजार,मेरठ।
73. श्रीमती अरुण कुमार नांद्रेकर ध.प. भाऊ साहेब नांद्रेकर, मुलुन्ड (वेस्ट) मुम्बई।
74. श्री भागचन्द मनीष कुमार ठोलिया, द्वारा-किरन एजेंसी, पो. बुरहानपुर, (म.प्र.)।
75. श्री कैलाशचन्द राजकुमार जैन रांवका, पो. बिसवां (सीतापुर) उ.प्र.।
76. श्रीमती विद्यावती जैन, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली।
77. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) एवं सुपुत्र श्री मदन कुमार, प्रदीप कुमार एवं प्रवीण कुमार जैन, धर्मपुरा, गाँधीनगर, दिल्ली।
78. श्रीमती अरुणा जैन, ध.प. प्रवीन्द्र कुमार जैन, प्रीतमपुरा, दिल्ली।

79. श्रीमती पुष्पादेवी, ध.प. महेन्द्र कुमार जैन, पुष्पांजली एन्क्लेव, दिल्ली।
80. श्री बाबूलाल तोताराम जैन, भुसावल (महा.)।
81. डॉ. अनुपम जैन, सुदामा नगर, इंदौर (म.प्र.)।
82. श्री विनय कुमार जैन, ज्वैलर्स, दरीबाकलां, दिल्ली।
83. स्व. श्री आनन्द प्रकाश जैन 'शान्तिप्रिय', जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.।
84. श्रीमती राजुलबाई ध.प. श्री नेमीचन्द जैन लोहाड़े, पो. कोपरगाँव (महा.)।
85. श्री धन्नालाल गोधा, मल्हारगंज, इंदौर (म.प्र.)।
86. श्री सुनील कुमार मनोज कुमार जैन, झिलमिल कालोनी, दिल्ली।
87. श्रीमती आशा जैन ध.प. श्री राजेश कुमार जैन बरुआ सागर (उ.प्र.)।
88. श्री पारसमल डूंगरमल जी पाटनी पो. मेड़तासिटी, नागौर (राजस्थान)।
89. श्री अनिल कुमार जैन (गुड़गांव वाले) प्रियदर्शनी विहार, दिल्ली-92।
90. श्रीमती कृष्णा बाई नेमीनाथ जैन, पी. वाले, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
91. श्रीमती मंजूलता जैन ध.प. श्री प्रभात चन्द गोधा, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
92. श्री प्रमोद कुमार जैन, पारस प्रिन्टर्स, शाहदरा-दिल्ली।
93. श्री चांदमल अनिल कुमार सरावगी, किशनगंज (बिहार)।
94. कुमारी अदिती सुपुत्री श्री अपोलो जी जैन सौगानी, इंदौर।
95. श्रीमती मंजूलता ध.प. प्रभाचन्द गोधा-नया बाजार, अजमेर।
96. श्री सुचेद्र कुमार शैलेन्द्र कुमार जैन, डाल्टनगंज (झारखंड)।
97. श्रीमती जतनदेवी लक्ष्मीचंद जैन, चेन्नई (तमिलनाडु)।
98. श्रीमती सखाई जैन ध.प. श्री जीतमल जैन, मड़ाना (कोटा) राज.।
99. श्री मोहित जैन पुत्र मुकेश जैन, जगन्नाथ जैन पहाड़िया, फतेहपुर (शेखावटी) राज.।
100. श्री नरेश जैन बंसल, गुड़गाँवा (हरि.)।
101. श्रीमती रतनबाई ध.प. राजेन्द्र प्रकाश कोठिया, कोटा (राज.)।
102. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री अजीत कुमार जैन, भिवाड़ी (राज.)।
103. श्रीमती प्रेमलता जैन ध.प. श्री सुशील कुमार जैन, मलाड़ (मुम्बई)।
104. श्री राजेन्द्र कुमार पंचौलिया, इंदौर (म.प्र.)।
105. स्व. श्री मोहनलाल हेमचंद गांधी, सतारा (महा.)।
106. श्रीमती आरती जैन ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन 'शीशे वाले', इलाहाबाद (उ.प्र.)
107. डॉ. विमला जैन ''विमल'' ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन, फिरोजाबाद (उ.प्र.)

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
1. महामंत्र का माहात्म्य	1
2. रानी चेलना	5
3. संक्लेश का फल	8
4. सती सुलोचना	11
5. तिर्यंचों में विवेक	13
6. मुनि निन्दा का फल	15
7. जिनेन्द्र प्रतिमा की आसादना का फल	17
8. कनकश्री का वैराग्य	18
9. लब्धि विधान व्रत की महिमा	20
10. महासती चन्दना	22
11. नागश्री	27
12. क्या हम भी तीर्थंकर बन सकते हैं?	31
13. वैयावृत्य	33
14. प्रियंगु सुन्दरी	36
15. पर्दाफाश कर दिया	40
16. अक्षय तृतीया	45
17. क्या मुनि रात्रि में बोल सकते हैं?	49
18. तिरस्कार से सत्कार	51
19. बलि प्रथा कब से चली?	54
20. अहिल्या की कथा	56
21. न्याय शास्त्र कसौटी के पत्थर हैं	58
22. क्या रावण कभी शीलवान था?	61
23. बालिकाओं का जीवन	64
24. सती द्रौपदी	68
25. महारानी केकसी	74
26. जैन हर्बल कम्पनी-मुम्बई द्वारा उत्पादित अहिंसक प्रसाधन सामग्री	78

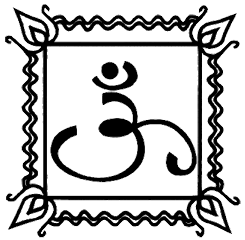

महामंत्र का माहात्म्य

उर्मिला—बहन त्रिशला! हमें एक बात बताओ कि प्रायः सभी जैन लोग प्रातः उठकर णमोकार मंत्र का स्मरण करते हैं क्या कारण है? इससे क्या फल मिलता है?

त्रिशला—बहन! णमोकार मन्त्र महामन्त्र है। इस महामन्त्र से चौरासी लाख मन्त्र उत्पन्न होते हैं। वास्तव में इसकी महिमा का तो वर्णन करना ही कठिन है।

देखो! कुत्ते ने अंत समय में णमोकार मंत्र को सुना, मरकर देव हो गया।

सुलोचना ने अपनी सहेली को सर्प के डस लेने पर णमोकार मंत्र सुना दिया, वह मरकर गंगादेवी हो गई जिसने सुलोचना के पति जयकुमार के हाथी को नदी में मगर के द्वारा पकड़े जाने पर रक्षा की थी। एक ग्वाला णमोकार मंत्र जपते हुए मरकर सेठ सुदर्शन हो गया जो कि उसी भव से मोक्ष को प्राप्त कर चुके हैं। ऐसे दो-चार क्या, अनगिनत उदाहरण भरे पड़े हैं अतः इस मंत्र को प्रतिदिन क्या, प्रतिक्षण जपते रहना चाहिये।

उर्मिला—तो क्या खाते-पीते, काम करते या मलमूत्रादि विसर्जन करते समय भी पढ़ सकती हूँ।

त्रिशला—हाँ! अवश्य ही पढ़ सकती हो, देखो! श्री उमास्वामी आचार्य ने णमोकार मंत्र के माहात्म्य में लिखा है कि—

उत्तिष्ठन् निपतन् चलन्नपि धरा-पीठे लुठन् वा स्मरेत्।
जाग्रद्वा प्रहसन् स्वपन्नपि वने, विभ्यन्निषीदन्नपि।।
गच्छद् वर्त्मनि वेश्मनि प्रतिपदं, कर्म प्रकुर्वन्नपि।
यः पंचप्रभुमेकमंत्रमनिशं, किं तस्य नो वांछितम्।।

अर्थ—उठते हुए, बैठते हुए, पृथ्वी पर गिरते या लेटते हुए, जागते हुए, हँसते हुए, सोते हुए, वन में डरते हुए, बैठते हुए, मार्ग में चलते हुए, घर पर पद-पद पर कोई भी काम करते हुए, जो हमेशा ही पंचपरमेष्ठी के नामरूप एक मंत्र का स्मरण करते हैं, उनको कौन से मनवांछित कार्य सिद्ध नहीं होते हैं? अर्थात् सभी मनोरथ सफल हो जाते हैं।

इस प्रकार से हर हालत में इस महामंत्र का स्मरण करना चाहिये किन्तु मल-मूत्रादि विसर्जन के समय या अपवित्र अवस्था में मन में ही स्मरण करना चाहिये, जिह्वा से उच्चारण नहीं करना चाहिये। ऐसा हमें माताजी ने बताया है। कहा भी है कि—

अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत् पंचनमस्कारः सर्वपापैः प्रमुच्यते।।

अर्थ—अपवित्र हो चाहे पवित्र, अच्छी स्थिति में हो, चाहे खराब स्थिति में हो, हर अवस्था में पंचनमस्कार मंत्र का जो ध्यान करते हैं, वे सभी पापों से छूट जाते हैं।

उर्मिला—इस मंत्र में ऐसा क्या जादू भरा है। बहन! इसका कुछ अर्थ तो बताओ।

त्रिशला—हाँ सुनो!

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

अर्थ—अरिहंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो और लोक में सर्व साधुओं को नमस्कार हो, इसमें सर्व और लोक शब्द अन्त्यदीपक हैं, अतएव पाँचों में इनका सम्बन्ध करना चाहिये। जैसे लोक में सभी अरिहंतों को नमस्कार होवे आदि। इस मंत्र में 35 अक्षर हैं और 58 मात्रायें हैं। इन 35 अक्षरों के स्मरणार्थ णमोकार पैंतीसी नाम का व्रत है, जिसमें तिथि से विधिवत् 35 उपवास करने का विधान है।

उर्मिला—इसके और भी संक्षिप्त लक्षण बताओ।

त्रिशला—अरिहंत—जिन्होंने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चारों कर्मों का नाश कर दिया ऐसे अरि—कर्म शत्रुओं को हनन करने वाले अरिहंत हैं। इनके 34 अतिशय, 8 प्रातिहार्य, 4 अनन्तचतुष्टय ऐसे 46 गुण होते हैं और जन्म, जरा, तृष्णा, क्षुधा आदि 18 दोष नहीं होते हैं। ऐसे ही सिद्धों के शेष बचे वेदनीय, आयु, गोत्र और अन्तराय ये चार अघातिया कर्म भी नष्ट हो गये हैं, ऐसे आठों कर्मों से रहित और मुख्य आठ गुणों से सहित तथा आन्तगुणों सहित ऐसे सिद्ध परमेष्ठी सर्वथा जन्म-मरण के दुःखों से रहित निरंजन परमेष्ठी लोक के अग्रभाग पर विराजमान हो गये हैं।

उर्मिला—बहन! जब सिद्ध परमेष्ठी अरिहंत से बड़े हैं तो फिर अरिहंत को पहले क्यों नमस्कार किया है?

त्रिशला—क्योंकि अरिहंत भगवान उपदेश देने वाले हैं और हम सभी संसारी प्राणी स्वार्थी हैं। पहले अपने को सच्चे उपदेश देने वाले और सिद्धों की भी महत्ता को बतलाने वालों को नमस्कार किया है।

आगे सुनो! जो पंचाचार का स्वयं पालन करते हैं और शिष्यों को भी कराते हैं, दीक्षा-शिक्षा आदि देकर शिष्यों का उपकार करते हैं, ऐसे आचार्य परमेष्ठी 36 गुणों से विभूषित दिगम्बर मुनि होते हैं। 11 अंग, 14 पूर्व अथवा तत्कालीन सभी जैन ग्रन्थों के पारंगत मुनि जो कि शिष्यों को पढ़ाते हैं, वे उपाध्याय परमेष्ठी हैं और जो 5 महाव्रत, 5 समिति, 5 इन्द्रिय निरोध, 6 आवश्यक क्रियाओं से सहित हैं तथा स्नान का त्याग, दन्तधावन का त्याग, वस्त्र का त्याग, केशलोंच, क्षितिशयन, एक बार भोजन, खड़े होकर आहार करते हैं, वे साधु परमेष्ठी हैं। इन पाँचों को यहाँ नमस्कार किया है।

उर्मिला—जब ये आचार्य आदि तीनों परमेष्ठी, आठों कर्मों से सहित संसारी हैं, फिर भी उनको इस महामंत्र में कैसे लिया है?

त्रिशला—वास्तव में ये तीनों रत्नत्रय को पालन करने वाले हैं और अरिहंत-सिद्ध के सच्चे आराधक हैं इनके भी एकदेश कर्मों का बन्ध नहीं होता है अतः ये भी सर्वथा पूज्य हैं। इसका विशेष वर्णन धवला की पहली पुस्तक में किया गया है।

इन पंचपरमेष्ठी के नामों में इतनी शक्ति है कि उनका उच्चारण करते ही तमाम पाप कर्म पलायमान हो जाते हैं।

उर्मिला—यदि अंतरंग में श्रद्धा और भावना नहीं है तो कैसे फल मिलेगा?

त्रिशला—कोई भी व्यक्ति मिश्री को यदि बिना श्रद्धा के या बिना भावना के खाता है, तो उसे मीठी लगती है या नहीं?

उर्मिला—मिश्री तो चाहे कोई जबरदस्ती से किसी के मुख में डाल दे या किसी भी तरह से क्यों न खावे, वह तो मीठी ही लगेगी।

त्रिशला—वैसे ही यह मंत्र किसी भी तरह से क्यों न जपा जाए, अच्छा ही फल देगा। हाँ! इतनी बात अवश्य है कि श्रद्धाभाव का फल कुछ विशेष रहेगा।

उर्मिला—यदि कोई इसका अपमान कर दे तो क्या होगा?

त्रिशला—हाँ! सुभौम चक्रवर्ती ने समुद्र में व्यन्तरदेव के बहकावे में आकर प्राणों के लोभ से णमोकार मंत्र लिखकर उसको पैर से मिटा दिया। देव ने उसी समय उसे डुबो दिया जिससे वह चक्रवर्ती मरकर सातवें नरक में चला गया और आज तक वहाँ दुःख भोग रहा है।

उर्मिला—ओहो! इतना करने मात्र से नरक चला गया, तब तो इस मंत्र का खूब ही विनय करना चाहिये।

त्रिशला—हाँ देखो! यदि तराजू के एक पलड़े में णमोकार मंत्र रखो और दूसरी तरफ अनंतगुणों को रख तो दो किंतु इस महामंत्र का ही पलड़ा भारी रहेगा, ऐसा श्री उमास्वामी आचार्य का वचन है।

उर्मिला—अब मैं भी प्रतिदिन इस मंत्र का जाप्य करूँगी।

विश्वशांति मंत्र

ॐ ह्रीं विश्वशांतिकराय
श्री शांतिनाथाय नमः।

रानी चेलना

अध्यापिका—बालिकाओं! तुम्हें चंदनबाला अथवा रानी चेलना जैसा आदर्श बनना चाहिये।

सुप्रभा—बहन जी! आज हमें आप संक्षेप में चेलना रानी का जीवनवृत्त बतलाइए।

अध्यापिका—अच्छा सुनो! वैशाली के राजा चेटक की सात कन्याएँ थीं, जो रूप और गुणों में सर्वत्र प्रसिद्ध थीं। उनमें सबसे बड़ी प्रियकारिणी 'त्रिशला' थीं, जो कि कुण्डलपुर के राजा सिद्धार्थ को ब्याही थीं। जिन्हें भगवान महावीर की माता होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

पाँचवीं कन्या चेलना, छठी ज्येष्ठा और सातवीं चंदना थीं। चेलना राजगृह नगर के राजा श्रेणिक की महारानी थीं। चेलना सम्यग्दृष्टि थी और राजा श्रेणिक बौद्ध धर्मानुयायी थे अतः समय-समय पर दोनों में धार्मिक विसंवाद होते रहते थे, राजा श्रेणिक रानी को बौद्धधर्मी बनाना चाहते थे और रानी चेलना राजा को जैनधर्मी बनाना चाहती थीं।

इसी सन्दर्भ में रानी चेलना ने बौद्ध भिक्षुओं को ढोंगी साबित करने हेतु अपमानित कर दिया और उनके रहने की झोपड़ी में आग लगवा दी, तब वे साधु उठकर भागे और राजा के पास शिकायत ले आये। राजा ने भी प्रतिशोध चुकाने के लिए एक दिन वन में ध्यानस्थ एक मुनिराज के ऊपर शिकारी कुत्ते छोड़े किन्तु मुनि के ध्यान के प्रभाव से वे कुत्ते शान्त हो गये, तब राजा ने क्रोधित होकर मुनिराज के गले में एक मरा हुआ सर्प डाल दिया। राजा श्रेणिक के उस समय परिणामों के संक्लेश विशेष से सातवें नरक की तेंतीस सागर प्रमाण आयु का बन्ध हो गया।

अनन्तर तृतीय दिवस रात्रि में राजा श्रेणिक द्वारा रानी को सूचना मिलते ही वह उसी समय राजा के साथ उस स्थल पर आईं और मुनिराज का उपसर्ग निवारण किया। उस समय मुनिराज ने दोनों को समान रूप से ''सद्धर्मवृद्धिरस्तु'' ऐसा आशीर्वाद दिया। इस उपसर्ग सहिष्णुता और समभावना से राजा अत्यधिक प्रभावित हुए और सम्यग्दृष्टि बन गये।

कालान्तर में उन्हें भगवान महावीर के समवसरण में साक्षात् केवली प्रभु के दर्शन का लाभ मिला। वे राजा श्रेणिक भगवान महावीर के समवसरण के मुख्य श्रोता थे और उन्होंने भगवान से साठ हजार प्रश्न किये।

सुप्रभा—बहन जी! मुख्य श्रोता का मतलब क्या है?

अध्यापिका—भगवान की दिव्य वाणी पूर्वाह्न, मध्याह्न और अपराह्न ऐसे तीन कालों में तीन-तीन मुहूर्त तक खिरती है किन्तु मुख्य श्रोता के आने पर कदाचित् असमय में भी खिर जाती है।

सुप्रभा—तो क्या भगवान पक्षपाती नहीं होंगे?

अध्यापिका—नहीं बेटी! भगवान तो वीतरागी हैं, उनके सर्वथा मोह का नाश हो जाने से राग और द्वेष का लेश भी नहीं है। केवल उन भव्य जीवों के पुण्य के प्रभाव से ही वैसा हो जाता है। देखो! विपुलाचल पर्वत पर भगवान का समवसरण अनेकों बार आया था, उसमें भी वहाँ के भव्य जीवों का ही पुण्य विशेष था। भव्यों के पुण्योदय से ही भगवान का विहार होता है एवं वाणी खिरती है। इच्छा से कभी भी नहीं खिरती है।

सुप्रभा—राजा श्रेणिक वीर प्रभु के इतने भक्त होकर भी नरक जाएँगे?

अध्यापिका—हाँ! आयु के बँधने के बाद छूट नहीं सकती है किन्तु फिर भी राजा श्रेणिक ने प्रभु के समवसरण में सोलह कारण भावनाओं द्वारा अत्यन्त विशुद्धि प्राप्त करके तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया है और सातवें नरक की तैंतीस सागर की आयु को कम करके प्रथम नरक की चौरासी हजार वर्ष मात्र की आयु को कर लिया है जोकि मध्यम आयु है। आज ये राजा श्रेणिक नरक में हैं। 21 हजार वर्ष का पंचम काल, 21 हजार वर्ष का छठा काल पुनः इतना ही छठे और पंचम काल के समाप्त होने पर आगे उत्सर्पिणी काल के चतुर्थ काल की आदि में ये ''महापद्म'' नाम के प्रथम तीर्थंकर होंगे।

इन राजा श्रेणिक ने क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करने के बाद ही उसे राजगृह नगर के अन्दर और बाहर ऊँचे-ऊँचे अनेक जिनमंदिर बनवाये थे और उनके भक्त मंत्री, पुरोहित और प्रजाओं ने भी समस्त मगध देश को जिनमंदिरों से युक्त कर दिया था। वहाँ नगर, ग्राम, घोष, पर्वतों के अग्रभाग, नदियों के तट और वनों के अन्त प्रदेशों में सर्वत्र जिनमंदिर ही जिनमंदिर दिखाई देते थे। ये परम जिनभक्त हो गये थे।

सुप्रभा—बहन जी! रानी चेलना को धन्य है कि जिन्होंने अपने पति को मिथ्यात्व से निकालकर सम्यग्दृष्टि बना दिया और तो क्या, वे आगे महान तीर्थंकर होंगे!

ऐसे ही चंदना भी कुमारावस्था में भयंकर कष्टों से नहीं घबराकर ब्रह्मचर्य की रक्षा करती हुई अनन्तर भगवान के समवसरण में आर्यिका बनकर आर्यिकाओं में शिरोमणि गणिनी हो गई थीं। ऐसे ही चेलना की सभी बहनों का जीवन आदर्शपूर्ण रहा है। सचमुच में आजकल हम जैसी कन्याओं के लिए इन सबका उदाहरण रखना बहुत ही जरूरी है।

णमोकार मंत्र स्तवन

—आर्यिका चन्दनामती

–शिखरिणी छंद–

णमो अरिहंताणं, नमन है अरिहंत प्रभु को।
णमो सिद्धाणं में, नमन कर लूँ सिद्ध प्रभु को।।
णमो आइरियाणं, नमन है आचार्य गुरु को।
णमो उवज्झायाणं, नमन है उपाध्याय गुरु को।।।1।।

णमो लोए सव्वसाहूणं पद बताता।
नमन जग के सब साधुओं को करूँ जो हैं त्राता।।
परमपद में स्थित कहें पाँच परमेष्ठि इनको।
नमन इनको करके लहूँ इक दिन मुक्ति पद को।।2।।

सभी के पापों को शमन करता मंत्र यह ही।
तभी सब मंगल में प्रथम माना मंत्र यह ही।।
जपें जो भी इसको वचन मन कर शुद्ध प्रणति।
लहें वे इच्छित फल, हृदय नत हो चन्दनामति।।3।।

1. हरिवंश पुराण पृ. 23।

संक्लेश का फल

सुप्रभा—बहन कनकप्रभा! आज स्वाध्याय करते हुए मैंने बहुत ही हृदय-द्रावक एक कथा पढ़ी है, सो मैं तुम्हें सुनाती हूँ।

कनकप्रभा—हाँ बहन! जरूर सुनाओ! ऐतिहासिक घटनाओं को सुनने से हृदय पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ता है और मन सहसा पाप से भीरू हो उठता है।

सुप्रभा—जिस समय सीता की अग्नि परीक्षा के लिये गहरे कुण्ड में अग्नि प्रज्ज्वलित कराई जा रही थी, उसी समय की घटना है कि अयोध्या नगरी के निकट महेन्द्रोदय नामक उद्यान में रात्रि में ध्यान में स्थित सर्वभूषण मुनिराज पर विद्युतवक्त्री नाम की राक्षसी ने घोर उपसर्ग किया था और वे मुनिराज उपसर्ग से चलायमान न होकर घातिया कर्मों का नाश कर केवली हो गये थे। उनके केवलज्ञान की पूजा के लिये इन्द्रादिगण वहाँ जा रहे थे कि बीच में मेषकेतु नाम के देव ने इस अग्निकुण्ड को देखकर इद्र से कहा कि हे सुरराज! अकारण ही सीता सती पर यह उपसर्ग क्यों हो रहा है? इन्द्र ने कहा—मैं सकलभूषण केवली की वंदना के लिये जा रहा हूँ सो तुम यहाँ ठहरकर इस उपसर्ग का निवारण करो। ऐसा कहकर इन्द्रादि देव चले गये थे और मेषकेतु देव ने सीता के शील के माहात्म्य से प्रभावित होकर अग्नि को जल करके सीता को कमलासन पर बिठाया था।

कनकप्रभा—बहन! विद्युतवक्त्री राक्षसी ने मुनिराज पर उपसर्ग क्यों किया था?

सुप्रभा—विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में गुन्जा नाम के नगर में सिंह नाम का राजा था उसकी "श्री" नाम की रानी से सकलभूषण नाम का पुत्र हुआ था। यौवनावस्था में इन सकलभूषण के आठ सौ स्त्रियाँ थीं। उनमें किरणमण्डला रानी सबसे प्रधान थीं। शुद्ध हृदय को धारण करने वाली किरणमण्डला ने किसी समय सपत्नी के कहने पर चित्रपट में अपने मामा के पुत्र का चित्र बनाया। उसे देखकर राजा सकलभूषण सहसा क्रुद्ध हो गये परन्तु अन्य पत्नियों के कहने पर वे शंका से रहित हो गये। पतिव्रता किरणमण्डला किसी समय अपने पति के निकट सोई हुई थीं। प्रमाद के कारण उसने बार-बार

हेमसिख का नाम उच्चारण किया जिसे सुनकर राजा अत्यन्त कुपित हुआ और उन्होंने विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा ले ली।

उधर किरणमण्डला भी साध्वी हो गईं किन्तु पति ने निर्दोष को दोषी समझकर दीक्षा ली है, इस निमित्तक संक्लेश के कारण से वह मरकर विद्युतवक्त्री नाम की राक्षसी हो गई। वहाँ उसने कुअवधिज्ञान से अपने पति का वैर जानकर उन पर उपसर्ग करना शुरू किया। जब सकलभूषण मुनि भिक्षा के लिये भ्रमण कर रहे थे, तब वह दुष्ट राक्षसी कुपित हो अन्तराय करने में तत्पर हो जाती थी। कभी वह मत्त हाथी का बंधन तोड़ देती, कभी घर में आग लगा देती। कभी घोड़ा, बैल बनकर मार्ग में बाधा देती, कभी मार्ग को कंटकों से अवरुद्ध कर देती। कभी किसी के घर में सन्धि फोड़कर धन लाकर ध्यान में लीन मुनिराज के सामने रखकर 'यही चोर है' ऐसा हल्ला मचाकर भीड़ इकट्ठा कर देती। कभी आहार करके बाहर आते समय स्त्रियों का हार लाकर इनके गले में बाँधकर कहती ''यह चोर है''। इस प्रकार अत्यन्त क्रूर राक्षसी ने इन मुनिराज पर भयंकर उपसर्ग किये। ये ही मुनिराज किसी समय महेन्द्रोदय उद्यान में ध्यान में लीन थे। तब इस राक्षसी ने पूर्व बैर के संस्कार से हाथी, व्याघ्र, सिंह तथा भयंकर सर्पादि का रूप लेकर तमाम उपसर्ग किये।

इन उपसर्गों को जीतकर महामना मुनिराज ने क्षपकश्रेणी पर आरोहण करके केवलज्ञान प्राप्त कर लिया था।

कनकप्रभा—बहन! इस राक्षसी ने निर्दोष मुनिराज पर इतने उपसर्ग किये इसे कितना पाप लगा होगा?

सुप्रभा—हाँ बहन! किसी भी मुनिराज के ऊपर उपसर्ग करने से या उनकी निन्दा करने से अथवा उनकी अवहेलना, अपमान आदि करने से महान पाप का बंध होता है। देखो! राजा श्रेणिक ने मात्र मरे हुए सर्प को मुनि के गले में डाला था, उसी समय उनके नरक की आयु का बंध हो गया था। ऐसे अनेकों भी उदाहरण पुराणों में पढ़ने में आते हैं अतः मुनियों के प्रति कभी स्वप्न में भी अनादर का भाव नहीं करना चाहिये।

कनकप्रभा—बहन! एक आर्यिका ने जैनधर्म के अनुकूल तपश्चरण करने पर भी राक्षस कुल के देवों में कैसे जन्म लिया?

सुप्रभा—बहन! मैं निर्दोष थी फिर भी मेरे पति ने मुझे दोषी समझकर

दीक्षा ले ली। ऐसा संक्लेश उनके हृदय में बना रहा और उसके सम्यक्त्व भी नहीं हो सका। इसी कारण से उसे व्यन्तरवासी देवों के राक्षस कुल में और स्त्री पर्याय में जन्म लेना पड़ा।

यदि सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ति हो जाती तो अवश्य ही वह आर्यिका स्त्री पर्याय को न प्राप्त होती और न व्यन्तर देवों में जन्म लेती, नियम से वैमानिक देवों में ही जन्म लेती। अतः बहन कनकप्रभा! अब अपने को अवश्य ही सम्यग्दृष्टि बनना चाहिये। सच्चे देव, शास्त्र, गुरू के सिवाय किसी पर भी श्रद्धान नहीं करना चाहिये और अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्पों को छोड़कर खूब स्वाध्याय करते हुए अपने शुद्ध आत्मा की प्राप्ति का पुरुषार्थ करना चाहिये।

जिनेन्द्र प्रतिमा के दर्शन का महत्व

जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा के दर्शन की भावना करते ही दो उपवास का फल मिल जाता है। चलने की अभिलाषा करते ही तीन उपवास का फल, चलने का आरंभ करते ही चार उपवास का फल, चलते-चलते पाँच उपवास का फल, कुछ दूर चले आने पर बारह उपवास का फल, बीच मार्ग में पहुँच जाने पर पन्द्रह उपवास का फल, सुमेरु की चोटी का दर्शन करते ही एक मास के उपवास का फल, मंदिर में प्रवेश करने पर छह मास के उपवास का फल, मंदिर के द्वार में प्रवेश करने पर एक वर्ष के उपवास का फल, तीन प्रदक्षिणा देने पर सौ वर्ष के उपवास का फल, जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के दर्शन करने से हजार वर्ष के उपवास का फल मिलता है। पुनः जिनप्रतिमा के सन्मुख खड़े होकर भावपूर्वक स्तुति करने से अनंत उपवास का फल प्राप्त होता है। यथार्थ में जिनेन्द्र भगवान की भक्ति से बढ़कर और कोई उत्तम पुण्य नहीं है।

—पद्मपुराण, पर्व 32, पृ. 99

सती सुलोचना

सुप्रभा—बहन कनकप्रभा! आज मुझे सुलोचना की कोई चमत्कारिक घटना सुनाओ।

कनकप्रभा—अच्छा बहन सुनो! सचमुच में सुलोचना भी एक महान नारीरत्न हुई है।

भरत चक्रवर्ती के सेनापति रत्न जयकुमार स्वयंवर विधि से सुलोचना के साथ पाणिग्रहण करके बनारस नगरी से चलकर अपनी राजधानी हस्तिनापुर नगरी की ओर जा रहे थे। मध्य में अकस्मात् मगर ने हाथी का पैर पकड़ लिया और हाथी डूबने लगा। यह दुर्घटना देख तट पर बैठी हुई सुलोचना घबरा गई। वह शीघ्र ही गंगा में उतर पड़ी और पति की रक्षा के लिए महामन्त्र का ध्यान करने लगी, सुलोचना के मन्त्रध्यान के प्रभाव से गंगादेवी का आसन कंपित हो गया, उसने आकर मगर का रूप धारण करके उपसर्ग करने वाली काली देवी को खूब फटकारा और जयकुमार सुलोचना को तट पर ले आई।

अनन्तर बहुत ही विनय भक्ति से उन्हें सिंहासन पर विराजमान करके उनकी पूजा करते हुए अपनी कृतज्ञता व्यक्त की और कहा कि हे सुलोचने! आपके दिये हुए महामन्त्र के प्रभाव से मैं विन्ध्यश्री कन्या मरकर यहाँ गंगादेवी हुई हूँ। इस घटना को सुनने के लिए जयकुमार ने इच्छा व्यक्त की, तब सुलोचना ने कहा—हे पतिदेव! विन्ध्यपुरी नगरी के राजा विन्ध्यकेतु की पुत्री विन्ध्यश्री मेरी सहेली थी। किसी दिन उपवन में क्रीड़ा करते समय उसे सर्प ने काट लिया। तब मैंने उसे मरणासन्न देखकर णमोकारमन्त्र सुनाया और श्रवण करते हुए मरकर वह सौधर्म इन्द्र की नियोगिनी गंगानदी की अधिष्ठात्री गंगादेवी हुई हैं और इसी धर्म वात्सल्य से इसने मेरी रक्षा करके पूजा की है।

सुप्रभा—सखि! यह तो बताओ उपसर्ग करने वाली यह काली देवी कौन थी?

कनकप्रभा—बहन! किसी समय जयकुमार ने एक सर्पिणी को अपने पति (सर्प) के मरने के बाद दूसरे सर्प के साथ क्रीड़ा करते हुए देख लिया। उसे ताड़ित किया, उस समय कर्मचारियों ने उन सर्प युगल को मार दिया। विजातीय सर्प मरकर काली देवी हो गया और उसी वैर से उसने यह उपसर्ग

किया था। बहन सुप्रभा! सुलोचना ने जयकुमार की दीक्षा के अनन्तर आर्यिका दीक्षा ले ली और ग्यारहअंगपर्यन्त ज्ञान प्राप्त कर लिया। घोराघोर तपश्चरण करके स्त्रीलिंग को छेदकर अच्युत स्वर्ग में देव हो गईं।

सुप्रभा—अच्छा बहन! अब चलें! ऐसी-ऐसी आदर्श नारियों के जीवनवृत्त को विद्यालय में छोटी-छोटी कन्याओं को मैं अवश्य सुनाऊँगी, जिससे उनका जीवन भी आदर्श बने।

मंगल स्तुति

—गणिनी ज्ञानमती

जिनने तीन लोक त्रैकालिक सकल वस्तु को देख लिया।
लोकालोक प्रकाशी ज्ञानी युगपत् सबको जान लिया।।
रागद्वेष जर मरण भयावह नहिं जिनका संस्पर्श करें।
अक्षय सुख पथ के वे नेता जग में मंगल सदा करें।।1।।

चन्द्र किरण चन्दन गंगाजल से भी शीतल जो वाणी।
जन्म मरण भय रोग निवारण करने में है कुशलानी।।
सप्तभंगयुग स्याद्वादमय गंगा जगत् पवित्र करे।
सबकी पाप धूलि को धोकर जग में मंगल नित्य करे।।2।।

विषय वासना रहित निरम्बर सकल परिग्रह त्याग दिया।
सब जीवों को अभय दान दे निर्भयपद को प्राप्त किया।।
भव समुद्र में पतित जनों को सच्चे अवलम्बन दाता।
वे गुरुवर मम हृदय विराजो सब जन को मंगल दाता।।3।।

अनन्त भव के अगणित दुःख से जो जन का उद्धार करे।
इन्द्रिय सुख देकर शिव सुख में ले जाकर जो शीघ्र धरे।।
धर्म वही है तीन रत्नमय त्रिभुवन की सम्पति देवे।
उसके आश्रय से सब जन को भव-भव में मंगल होवे।।4।।

श्री गुरु का उपदेश ग्रहण कर नित्य हृदय में धारें हम।
क्रोध मान मायादिक तजकर विद्या का फल पावें हम।।
सबसे मैत्री दया क्षमा हो सबसे वत्सल भाव रहे।
'सम्यग्ज्ञानमती' प्रगटित हो सकल अमंगल दूर रहे।।5।।

तिर्यंचों में विवेक

कमला—बहन विमला! अब की बार हस्तिनापुर में कार्तिक की अष्टान्हिका पर्व के मेले पर मैं भी हस्तिनापुर गई थी। वहाँ पर आठ दिन तक रही, बड़ा ही आनन्द आया। वहाँ पर राजा सोमप्रभ और उनके भाई श्रेयांस कुमार ने भगवान को आहार दान दिया था। उन्हीं राजा सोमप्रभ के पुत्र रत्न और सम्राट् भरतचक्रवर्ती के सेनापति श्रीमन् जयकुमार ने बहुत काल तक हस्तिनापुर में राज्य किया था। अनन्तर दिगंबर मुनि बनकर भगवान ऋषभदेव के 62वें गणधर हुए थे।

विमला—बहन कमला! इन जयकुमार का जीवनवृत्त मुझे भी सुनाओ।

कमला—सखी! उनका जीवनवृत्त तो फिर कभी सुनाऊँगी, अभी मैं तुम्हें उनके जीवन की एक घटना सुनाती हूँ कि जिसमें तिर्यंचों के विवेक का पता चलता है।

किसी समय राजा जयकुमार क्रीड़ा के लिए बाहर उद्यान में गये और वहाँ विराजमान शीलगुप्त महामुनि के दर्शन-पूजन कर उनका उपदेश श्रवण कर रहे थे। वहाँ पर सांप का युगल गुरू का उपदेश श्रवण कर रहा था। जिसे जयकुमार ने देखा था। किसी समय प्रचंड वज्र के गिरने से उस जोड़े का सर्प मर गया और शांत परिणाम सहित होने से नागकुमार जाति का देव हो गया। अनन्तर किसी समय उस जोड़े की पत्नी (सर्पिणी) अन्य विजातीय काकोदर सर्प से रमण करने लगी। उसके इस कृत्य को जयकुमार ने एक दिन उद्यान में देख लिया और उस सर्पिणी को व्यभिचारिणी समझकर धिक्कार देकर क्रीड़ा कमल से ताड़ित कर दिया। यह देख कर्मचारी जनों ने भी उस सर्प-सर्पिणी को डण्डे, पत्थर आदि से ताड़ित किया। इस ताड़ना से काकोदर सर्प मारा गया और गंगा नदी में 'काली' नाम की व्यंतर देवी हो गया।

इधर सर्पिणी ने भी इस घटना से पश्चातापयुक्त होकर धर्मध्यान में अपना उपयोग लगाया और मरकर पूर्व के अपने पति (सर्प) के जीव नागकुमार देव की ही देवी हो गई। वहाँ कुअवधिज्ञान से अपने पूर्व के जयकुमार द्वारा हुये अपमान को अपने पति को सुना दिया। उसी समय नागकुमार देव पत्नी के अपमान का बदला चुकाने के लिए सर्प बनकर जयकुमार को डसने के लिए जयकुमार के भवन में आ गया।

इधर जयकुमार रात्रि में अपनी श्रीमती रानी से इस सर्पिणी के व्यभिचार की घटना सुना रहे थे। उसे सुनकर नागकुमार देव ने अपने मन में सोचा कि देखो! स्त्रियाँ कैसी होती हैं? उसने अपने व्यभिचार की घटना मुझसे छिपा ली और मैं भी पत्नी के मोह में मूढ़ होकर महापुरुष जयकुमार को डसने के लिए आ गया। वास्तविकता को जानकर नागकुमार देव ने जयकुमार की पूजा की, स्तुति की। भविष्य में अपने कार्य के लिए मुझे स्मरण करना, ऐसा कहकर स्वस्थान को चला गया।

बहन विमला! जब जयकुमार हाथी पर चढ़कर गंगा नदी पार हो रहे थे तब इसी 'काली' ने मगर का रूप धारणकर जयकुमार के हाथी को पकड़ा था।

विमला—बहन! आपने खूब सुन्दर इतिहास बताया है। इसी प्रकार और भी बताते रहना। सचमुच में पशुओं में भी शील का और व्यभिचार का विवेक होता है किन्तु यदि मनुष्य में यह विवेक नहीं है, तो वे पशु से भी हीन हैं। अच्छा! अब चलूँ, फिर प्रातः मिलूँगी।

णमोकार मंत्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं, णलो लोएसव्वसाहूणं।।

अर्हंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो, लोक में सर्व साधुओं को नमस्कार हो।

इस मंत्र में अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पाँच परमेष्ठियों को नमस्कार किया है।

मुनि-निंदा का फल

सुप्रभा—बहन प्रभावती! आज मैंने सुना है कि मुनि-निन्दा से कुष्ठ रोग हो जाता है, क्या यह सच है?

प्रभावती—हाँ बहन सुप्रभा! इस बारे में एक घटना बड़ी ही रोमांचकारी है, सुनो! मैं तुम्हें सुनाती हूँ।

किसी समय अयोध्या नगरी में एक 'सुरत' नाम के राजा राज्य करते थे। इनकी पाँच सौ स्त्रियों में एक महादेवी रानी को पट्टरानी पद प्राप्त था। पट्टरानी के राजभवन में एक दिन राजा बैठे हुए थे। उस समय उन्होंने कर्मचारियों से कहा कि यदि कोई साधु आ जावे तो मुझे सूचना दे देना।

पुण्योदय से एक महीने का उपवास करके एक दमदत्त मुनिराज आहार के लिए उधर आ गये। द्वारपाल ने तत्क्षण ही राजा को सूचना दे दी। राजा उस समय अपनी प्राणप्रिया के मुखकमल पर तिलक रचना कर रहे थे। वे रानी से बोले—हे प्रिये! जब तक कि तुम्हारा तिलक न सूखे, मैं अभी मुनिराज को आहार देकर बहुत जल्दी आ जाता हूँ। यह कहकर राजा चले गये। राजा ने उधर जाकर मुनिराज का पड़गाहन कर नवधा भक्ति से आहार दान दिया और महान पुण्य का संचय कर लिया।

इधर महारानी अपने विषय सुख में विघ्न डालने वाले मुनिराज का आगमन सुनकर बहुत ही दुःखी हुई और अपना भला-बुरा न सोचकर मुनियों की निन्दा करना शुरू कर दिया। वह मन-ही-मन मुनियों को गालियाँ दे रही थी। बस! उसके पाप का फल तत्काल ही फलित हो गया और उसी समय उसके सारे शरीर में कुष्ठ फूट गया। सारा शरीर काला पड़ गया और भयंकर दुर्गन्ध निकलने लग गई।

सुप्रभा—क्या बहन! मुनियों की निन्दा से इतना भयंकर पापकर्म बँध जाता है?

प्रभावती—हाँ सखी! मुनि निन्दा से तो कुष्ठ रोग का होना इतना बड़ा पाप का फल तो है ही, बल्कि अनेकों जीवों को तो नरकों में असंख्य वर्षों तक दुःख उठाना पड़ता है। आचार्यों का कहना है कि हालाहल विष खा लेने से तो उस ही भव में कष्ट होता है, किन्तु मुनि निन्दा से जो पाप होता है, वह भव-

भव में दुःख देने वाला है क्योंकि आत्महित में प्रवृत्त महामुनियों की निन्दा करना कदापि अच्छा नहीं है।

सुप्रभा—पुनः क्या हुआ?

प्रभावती—पुनः राजा मुनिराज को आहार देकर वहाँ आ गये, आते ही उन्होंने रानी का ऐसा दुर्गन्धित शरीर देखकर बहुत ही आश्चर्य किया और कारण ज्ञात कर वे तत्काल ही संसार-शरीर और विषयों से विरक्त हो गये। उसी समय राज्य का त्याग कर दिगम्बर मुनि हो गये।

सुप्रभा—पुनः क्या हुआ?

प्रभावती—वह रानी पाप के फल का कटु अनुभव करके मरी और संसार-वन में बहुत काल तक घूमती रही।

इसलिए बहन! सदैव गुरुओं की भक्ति करना चाहिये। गुरू अज्ञानान्धकार को नष्ट करते हैं, इसलिए दीपक हैं। सबका हित करते हैं, इसलिए बन्धु हैं और संसार-समुद्र से पार करने वाले होने से सच्चे कर्णधार हैं। अतः तन, मन, धन से ऐसे सच्चे गुरुओं की सेवा सुश्रूषा, आराधना, भक्ति आदि करते रहना चाहिये

महामंत्र की महिमा

उठते, बैठते, चलते, फिरते समय, घर से निकलते समय, मार्ग में चलते समय, घर में कुछ काम करते समय पद—पद पर जो णमोकार मंत्र को जपते रहते हैं उनके कौन से मनोरथ सफल नहीं हो जाते हैं? अर्थात् संपूर्ण वांछित सिद्ध हो जाते हैं।

छींक आने पर, जंभाई लेने पर, खांसी आदि आने पर या अकस्मात् कहीं वेदना के उठ जाने पर या चिंता हो जाने पर, सोते समय और सोकर उठते ही और आश्चर्य आदि प्रसंगों में श्री जिनेन्द्रदेव का स्मरण करना चाहिए।

जिनेन्द्र प्रतिमा की आसादना का फल

कनकोदरी रानी पट्टरानी के पद पर आसीन थीं अतः उसे अपने ऐश्वर्य और सुख का बहुत ही अभिमान था। उसकी 'लक्ष्मी' नाम की सौतन थी जो कि सम्यग्दर्शन से पवित्र थी और सदा मुनियों की पूजा में तत्पर रहती थी। उसने अपने घर के चैत्यालय में एक जिनप्रतिमा स्थापित कर रखी थी और प्रतिदिन भक्ति से जिनपूजन करती थी तथा अनेकों स्तोत्रों से स्तुति किया करती थी। कनकोदरी महादेवी के अभिमानवश 'लक्ष्मी' से बहुत ही द्वेष किया करती थी। एक दिन लक्ष्मी का अपमान करने हेतु उस कनकोदरी ने उसके चैत्यालय के जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा को निकालकर घर के बाहरी भाग में फिंकवा दिया।

इसी बीच में 'संयमश्री' आर्यिका आहार के लिये इसके घर में आई थीं वे बहुत ही तपस्विनी थीं। जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा का अनादर देख आर्यिका ने बहुत ही दुःखी हो आहार त्याग कर दिया तथा कनकोदरी को मिथ्यात्वग्रस्त देखकर करुणाबुद्धि से उसे उपदेश देने लगीं। उन्होंने कहा कि हे भद्रे! मेरी बात को ध्यान देकर सुन! तूने पुण्य से यह वैभव और पट्टरानी का सुख प्राप्त किया है, किन्तु तूने जो यह कार्य किया है उससे तू भव-भव में बहुत-ही दुःख को प्राप्त करेगी। जो अर्हंत भगवान की प्रतिमा का तिरस्कार करते हैं, वे अनेकों भवोंमें असह्य दुःखों को प्राप्त कर लेते हैं, यद्यपि वीतराग भगवान अपने शरणागत पर न प्रसन्न होते हैं और न निन्दक पर अप्रसन्न ही होते हैं, फिर भी जिनेन्द्र देव की वन्दना से सातिशय पुण्य की प्राप्ति और निन्दा, अपमान से घोर दुःखों की प्राप्ति स्वयमेव हो जाती है। यदि मैं इस समय तुझे सम्बोधित न करूँ और तेरा नरक में निवास हो जावे, तो यह मेरा बहुत बड़ा प्रमाद कहलावेगा।

आर्यिका के सम्बोधन से उस कनकोदरी ने नरकों के दुःखों से भयभीत होकर सम्यग्दर्शन ग्रहण करके आर्यिका के कहे अनुसार तप भी किया। जिनेन्द्र प्रतिमा का अर्जन कर वह कनकोदरी मरकर स्वर्ग में देवी हुई और कालान्तर में राजा महेन्द्र की पुत्री अंजना हुई है किन्तु जिनप्रतिमा की आसादना के पाप का फल बिना भोगे नहीं छूट सका अतः उसे अंजना के भव में बाईस वर्ष तक पति के वियोग का दुःख सहना पड़ा है। ऐसा समझकर प्रत्येक प्राणी को जिन-प्रतिमा और गुरू की विराधना, अपमान आदि से दूर रहना चाहिये और तन, मन, धन से उनकी भक्ति-पूजा करनी चाहिये।

कनकश्री का वैराग्य

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में वत्सकावती देश की प्रभाकरी नगरी के राजा स्तिमित सागर की वसुंधरा रानी से 'अपराजित' नामक पुत्र एवं अनुमति रानी से अनन्तवीर्य पुत्र ऐसे बलदेव और नारायणपदवी धारक दो पुत्र उत्पन्न हुये। यौवन अवस्था में राजा ने इन दोनों का राज्याभिषेक करके आप दीक्षा ले ली। इनके यहाँ बर्वरी और चिलातिका नाम की दो नृत्यकारिणी थी। किसी दिन दोनों राजा उन दोनों का नृत्य देखते हुए, सुख से बैठे ही थे कि उसी समय नारद जी आ गये। दोनों भाई नृत्य की आसक्ति में नारद जी का आदर नहीं कर सके। कलह प्रेमी नारद उसी समय क्रोधित हुए और उठकर शिवमन्दिर नगर में राजा दमितारी के पास जाकर नर्तकियों के विषय में बोले कि राजन्! वे नर्तकियाँ तुम्हारे ही योग्य हैं। दमितारी ने दूत को नर्तकियों को लाने के लिये प्रभाकरी नगर में भेज दिया। वहाँ से वे दोनों राजा विचार-विमर्श कर स्वयं नर्तकी का वेश बनाकर आ गये। राजा दमितारी ने नर्तकियों के नृत्य से प्रसन्न हो आज्ञा दी कि तुम दोनों मेरी कन्या को नृत्य सिखला दो। किसी दिन दोनों नर्तकियों ने नृत्य करते हुए कन्या कनकश्री के सामने अनन्तवीर्य राजा के गुणरूप का अत्यधिक वर्णन किया और कन्या को आसक्त देख अपना रूप प्रकट कर उसे लेकर चले गये। राजा दमितारि ने यह घटना सुनते ही अपने योद्धागण भेजे, किन्तु दोनों ने सबको पराजित कर दिया। अनन्तर दमितारि ने स्वयं उन अपराजित और अनन्तवीर्य के साथ युद्ध करते हुए अपना चक्ररत्न चला दिया। अनन्तवीर्य के सामने आया हुआ चक्र उनकी प्रदक्षिण करके उनके पास ठहर गया, तब अनन्तवीर्य ने उसी चक्ररत्न से दमितारि को मार दिया।

युद्ध समाप्त कर जाते हुए विमान से स्तंभित होने से दोनों राजा कनकश्री सहित नीचे उतरे और 'कीर्तिधर' जिनराज के समवसरण में पहुँचे। ये कीर्तिधर जिनराज कनकश्री के बाबा थे। सबने वन्दना-स्तुति के बाद उपदेश सुना, कनकश्री ने अपने निमित्त से अपने पिता की मृत्यु का कारण पूछा, जिनेन्द्रदेव ने बतलाया कि इसी भरतक्षेत्र में शंखनगर के देविल वैश्य की तू श्रीदत्ता कन्या थी। तू कपटी, लंगड़ी, टोंटी, बहरी, कानी, कुबड़ी और खाँजी ऐसी अपनी बहनों की सेवा किया करती थी। किसी समय सर्वयश मुनि की वन्दना करके

तुमने अहिंसाव्रत लिया और धर्मचक्र नाम का उपवास ग्रहण किया। एक समय आर्यिका को तूने आहार दान दिया। उनका पहले दिन का उपवास होने से उन्हें वमन हो गया, जब तूने ग्लानि की। व्रत और दान के प्रभाव से तू स्वर्ग में देवी हुई और वहाँ से आकर अर्धचक्री प्रतिनारायण राजा दमितारि की पुत्री हुई है किन्तु आर्यिका से घृणा करने के निमित्त से तुझे यह दुःख देखना पड़ा है, इसीलिये बुद्धिमान लोग साधु से कभी भी घृणा नहीं करते हैं।

अनन्तर किसी समय कनकश्री के भाई सुघोष और विद्युदंष्ट को युद्ध में अनन्तवीर्य ने बाँध लिया है, यह सुनकर कनकश्री बहुत दुःखी हुई और पति से प्रार्थना करके दोनों भाईयों को बंधन से छुड़वाकर आप स्वयं विरक्त होकर स्वयंप्रभ तीर्थंकर के समवसरण में जाकर सुप्रभा नाम की गणिनी आर्यिका से आर्यिका दीक्षा लेकर सम्यक्त्व और तपश्चरण के प्रभाव से सौधर्म स्वर्ग में देव पद प्राप्त कर लिया।

दिगम्बराचार्य गुरु सबसे बड़े वैद्य हैं

जैसे वैद्य, रोगी, औषधि और परिचारक के संयोग से आरोग्य होता है वैसे ही गुरु, शिष्य, रत्नत्रय और साधन के संयोग से मोक्ष होता है।

आचार्य वैद्य हैं, शिष्य रोगी है, औषधि चर्या है। इन्हें तथा क्षेत्र, बल, काल और पुरुष को जानकर धीरे-धीरे इनमें दृढ़ करे।

आचार्य देव वैद्य हैं, शिष्य रोगी हैं, औषधि निर्दोष भिक्षा चर्या है, शीत, उष्ण आदि सहित प्रदेश क्षेत्र हैं, शरीर की सामर्थ्य आदि बल है, वर्षा आदि काल हैं एवं जघन्य, मध्यम तथा उत्कृष्ट भेद रूप पुरुष होते हैं। इन सभी को जानकर आकुलता के बिना आचार्य शिष्य को चर्यारूपी औषधि का प्रयोग कराये ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार वैद्य रोगी को आरोग्य हेतु औषधि प्रयोग कराकर स्वस्थ कर देता है।

—मूलाचार

लब्धि विधान व्रत की महिमा

अवन्ती देश में पुष्पपुर नाम का एक नगर था। उस नगर के राजा का नाम महीचन्द्र तथा रानी का नाम सुन्दरी था। एक दिन उस नगर के बाहर चतुर्विध संघ सहित श्री अनंगभूषण आचार्य पधारे। राजा महीचन्द्र सभी नगर निवासियों के साथ मुनिराजों की वन्दना के लिये वहाँ आये और मुनियों की पूजन-वन्दना करके पास में बैठ गये। उसी समय वहाँ अत्यन्त कुरूपा तीन शूद्र कन्याएँ आईं। राजा ने धर्मोपदेश सुनने के बाद मुनिराज से प्रश्न किया कि हे भगवन्! इन तीन कन्याओं को देखकर मेरे हृदय में अधिक प्रेमभाव क्यों हो रहा है? मुनिराज अवधिज्ञानी थे, उन्होंने कहा कि इसका कारण पूर्वभव का सम्बन्ध है, सो सुनो!

बनारस नगर के राजा विश्वलोचन की विशालाक्षी नाम की रानी थी। किसी दिन रानी अपनी रंगी और चमरी नाम की दो दासियों के साथ एक नाटक देखकर स्वतंत्रतापूर्वक विचरण करने के लिए रात्रि में घर से निकल गई और योगिनी का वेश बनाकर मायाचारी से वेश्यावृत्ति करने लगी। इधर राजा रानी के वियोग में मरकर अनेकों भवों में दुःख उठाते हुए कदाचित् णमोकार मन्त्र के प्रभाव से तुमने यह उत्तम राज्य पद प्राप्त किया है।

उस विशालाक्षी ने मद्य, माँस, मधु आदि का सेवन करते हुए एक दिन रात्रि में मुनिराज पर भयंकर उपसर्ग किया। अनन्तर रौद्र ध्यान से मरकर पाँचवें नरक में गई। वहाँ के दुःख भोगकर वहाँ से निकलकर ये तीनों बिल्ली हुईं पुनः तीनों सूकरी हुईं पुनः कुत्ती हुईं, अनन्तर मुर्गी की योनियों में आईं। इन तीनों ने एक-साथ ही पाप किया और एक साथ ही कुफल का अनुभव करती रहीं। ये तीनों कन्याएँ गर्भ में आईं तब उनके कुटुम्बी लोग मर गये। इनमें से एक कानी, दूसरी लंगड़ी और तीसरी अत्यन्त कुरूपा थी। इन्होंने रानी के भव में मुनियों पर घोर उपसर्ग किये थे। मुनिराज के मुख से अपने पूर्वभवों को सुनकर ये तीनों कन्याएँ बहुत ही दुःखी हुईं और पाप से भयभीत हो गयीं। वे मुनिराज से प्रार्थना करने लगीं कि हे भगवन्! इन दुःखों से छूटने के लिये अब मुझे कोई उपाय बतलाइये।

मुनिराज ने उन तीनों को धर्म का उपदेश देकर कहा कि हे पुत्रियों! तुम

लब्धिविधान व्रत करो तो सब दुःखों से छूट जावोगी।

गुरूदेव के उपदेश से उन तीनों कन्याओं ने लब्धि विधान व्रत विधिपूर्वक करके उसका उद्यापन किया। श्रावकों के व्रत धारण कर लिये और अन्त में समाधिमरण धारण कर लिया। अरहंत देव के बीजाक्षर मन्त्रों का स्मरण करते हुए उन तीनों ने शरीर का त्याग किया और स्त्रीलिंग से छूटकर स्वर्ग में प्रभावशाली देव हो गये।

मगध देश के अन्तर्गत एक ब्राह्मण नामक नगर में शांडिल्य नाम का एक ब्राह्मण था। उसकी पत्नी का नाम स्थंडिला था। इन दोनों के विशालाक्षी का जीव देव पर्याय से गर्भ में आकर नव महीने के बाद पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ जिसका नाम इन्द्रभूति रखा गया। उसी ब्राह्मणी से दूसरे देव ने जन्म लिया, उसका नाम वायुभूति रखा गया। इस ब्राह्मण के एक दूसरी केसरी नाम की पत्नी थी। उससे तीसरे देव ने जन्म लिया जिसका नाम अग्निभूति रखा गया। बड़े होने पर ये तीनों ही भाई वेद-वेदांगों में, सभी विद्याओं में पारंगत थे। इन तीनों के पाँच-पाँच सौ शिष्य थे।

भगवान महावीर को केवलज्ञान होने के बाद छ्यासठ दिन तक दिव्यध्वनि नहीं खिरी, तब इन्द्र की कुशलता से ये इन्द्रभूति ब्राह्मण वहाँ गये और मानस्तम्भ का दर्शन करते ही मिथ्यात्व का वमन कर दीक्षित होकर प्रथम गणधर हो गये। ये दोनों भाई भी भगवान के गणधर हो गये।

देखो बहनों! रानी ने स्वच्छन्दता में सुख समझा तब राज्य-वैभव के सुख ठुकरा दिये और कितने दुःख उठाये पुनः लब्धिविधान व्रत और गुरूभक्ति के तथा जिनेन्द्र भगवान के सच्चे धर्म के प्रसाद से यह गणधर पद प्राप्त कर लिया। ये तीनों ही इसी भव से मोक्ष चले गये हैं। गणधर देव नियम से सर्वर्द्धि-सम्पन्न और मुक्तिगामी होते हैं। पूर्व में भगवान ऋषभदेव के पुत्र अनन्तवीर्य ने भी इसी व्रत[1] का अनुष्ठान किया था।

1. भाद्रपद शुक्ला प्रतिपदा दूज और तीज ऐसे तीन दिन उपवासपूर्वक तीन वर्ष तक यह व्रत किया जाता है।

महासती चन्दना

सुधा—बहन कनकलता! क्या चन्दना को वेश्या के हाथ बेचा गया था?

कनकलता—नहीं बहन! यह बात तो दिगम्बर सम्प्रदाय के ग्रन्थों में नहीं है।

सुधा—अच्छा! तो क्या जो यह स्टेज पर बालिकायें चन्दनबाला का नाटक खेलती हैं, वह गलत है?

कनकलता—हाँ बहन! बिल्कुल गलत है। सुनो! मैं तुम्हें उत्तरपुराण ग्रन्थ के आधार से चन्दना का इतिहास सुनाती हूँ।

सिन्धु देश की वैशाली नगरी में राजा चेटक राज्य करते थे। वे जिनेन्द्रदेव के परम भक्त थे, उनकी रानी का नाम सुभद्रा था। इन दम्पत्ति के दस पुत्र हुए जो कि धनदत्त, धनभद्र, उपेन्द्र, सुदत्त, सुकम्भोज, अकंपन, पतंगक, प्रभंजन और प्रभास नाम से प्रसिद्ध हुए तथा उत्तम क्षमा आदि दस धर्मों के समान जान पड़ते थे। इन पुत्रों के सिवाय सात ऋद्धियों के समान सात पुत्रियाँ भी थीं, जिनमें सबसे बड़ी प्रियकारिणी थी, उससे छोटी मृगावती, उससे छोटी सुप्रभा, उससे छोटी प्रभावती, उससे छोटी चेलना, उससे छोटी ज्येष्ठा और सबसे छोटी चन्दना थी।

विदेहदेश के कुण्डलपुर नगर में नाथवंश के शिरोमणि एवं तीनों सिद्धियों से सम्पन्न राजा सिद्धार्थ राज्य करते थे। पुण्य के प्रताप से प्रियकारिणी उनकी पत्नी हुई थीं। वत्सदेश के कौशाम्बी नगर में चन्द्रवंशी राजा शतानीक रहते थे, मृगावती नाम की दूसरी पुत्री इन्हें ब्याही गई। दशार्ण देश के हेमकच्छ नगर के स्वामी राजा दशरथ थे, ये सूर्यवंश के तिलक थे। सूर्य की निर्मल प्रभा के समान सुप्रभा इनकी रानी हुई थीं। कच्छदेश के रोरुक नामक नगरी में उदयन नाम का प्रतापशाली राजा था उसको प्रभावती नाम की चौथी पुत्री विवाही गई थी। अच्छी तरह शीलव्रत के पालन करने से उसका दूसरा नाम शीलवती भी प्रसिद्ध हो गया था। गांधार देश के महीपुर नगर में राजा सत्यक रहता था, उसने राजा चेटक से उसकी ज्येष्ठा नाम की पुत्री की याचना की परन्तु राजा ने नहीं दी। इससे उसने कुपित होकर रणांगण में युद्ध किया परन्तु युद्ध में वह हार गया। जिससे मान भंग होने से उसने दमवर मुनिवर के समीप जाकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली।

तदनन्तर राजा चेटक के स्नेह के कारण सदा देखने के लिये पट्टक पर अपनी सातों पुत्रियों के उत्तम चित्र बनवाये। राजा चेटक देव की पूजा के समय जिनप्रतिमा के समीप ही अपनी पुत्रियों का चित्रपट फैलाकर सदा पूजा किया करते थे। किसी समय राजा चेटक अपनी सेना के साथ मगध देश के राजगृह नगर में गये। वहाँ उन्होंने नगर के बाह्य उपवन में डेरा डाला। स्नान करने के बाद उन्होंने पहले जिनप्रतिमाओं की पूजा की और उसके बाद समीप में रखे हुए चित्रपट की पूजा की। यह देखकर राजा श्रेणिक ने समीपवर्ती लोगों से पूछा कि यह क्या है? तब उन लोगों ने कहा कि राजन्! ये राजा की सातों पुत्रियों के चित्रपट हैं। इनमें ये चार पुत्रियाँ तो विवाहित हो चुकी हैं परन्तु तीन अविवाहित हैं, उन्हें ये अभी नहीं दे रहा है। इन तीन कन्याओं में दो तो यौवनवती हैं और छोटी अभी बालिका है।

लोगों के उक्त वचनों को सुनकर राजा ने मंत्रियों से बतलाया कि मेरा मन इन दोनों पुत्रियों में अनुरक्त हो रहा है। मन्त्री लोगों ने यह समाचार अभयकुमार से कहा और यह भी बतलाया कि राजा चेटक अपनी इन पुत्रियों को राजा श्रेणिक की अवस्था ढल जाने के कारण देना नहीं चाहता है। मंत्रियों के वचन सुनकर कार्य के उपाय में चतुर अभयकुमार ने कहा कि आप लोग चुप बैठिये, मैं इस कार्य को सिद्ध करता हूँ। इस प्रकार सन्तुष्ट करके अभयकुमार ने मन्त्रियों को तो विदा कर दिया और स्वयं एक पटिये पर अपने पिता राजा श्रेणिक का सुन्दर चित्र बनाया। उसे वस्त्र से ढककर बड़े यत्न से ले गया। वैशाली में प्रवेश कर एक व्यापारी का वेष बनाकर युक्ति से राजा चेटक के घर में प्रवेश किया। अपने पुरुषार्थ से दोनों कन्याओं को आकर्षित कर सुरंग के मार्ग से उन्हें लाने लगा। बीच में चेलना ने ज्येष्ठा को आभूषण लाने हेतु भेज दिया और स्वयं अभयकुमार के साथ राजगृह नगर आ गई। राजा श्रेणिक ने बड़ी प्रीति से चेलना के साथ विवाह करके उसे महादेवी का पट्ट बाँधा, जिससे वह बहुत ही सन्तुष्ट हुई।

ज्येष्ठा ने इस घटना से विरक्त होकर यशस्वती आर्यिका के समीप आर्यिका दीक्षा ले ली। उस समय कुमारी चन्दना ने भी उन्हीं आर्यिका के समीप सम्यग्दर्शन और श्रावकों के व्रत ग्रहण कर लिये।

किसी एक समय वह चन्दना अपने परिवार के लोगों के साथ अशोक

नामक वन में क्रीड़ा कर रही थी। उसी समय दैवयोग से विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी सुवर्णाभ नगर का राजा मनोवेग विद्याधर अपनी मनोवेगा रानी के साथ क्रीड़ा करता हुआ वहाँ से निकला और क्रीड़ा करती हुई चन्दना को देखकर काम के द्वारा छोड़े गये बाणों से जर्जर शरीर हो गया। वह शीघ्र ही अपनी स्त्री को घर भेजकर और रूपिणी विद्या से अपना दूसरा रूप बनाकर उसे सिंहासन पर बैठा दिया तथा आप तत्क्षण ही अशोक वन में आकर चन्दना का हरण करके शीघ्र वापस चला गया। उधर मनोवेगा रानी उसकी माया को समझ गयी। जिससे क्रोध के कारण उसके नेत्र लाल होकर भयंकर दिखने लगे। उसने उस देवता को बायें पैर की ठोकर देकर मार दिया जिससे वह अट्टहास करती हुई सिंहासन से उसी समय चली गई। तदनन्तर वह मनोवेगा रानी आलोकिनी विद्या से अपने पति की सब चेष्टा जानकर उसके पीछे दौड़ी और आधे मार्ग में विलपती हुई चन्दना सहित लौटते हुए अपने पति को देखकर बोली कि यदि आप अपना जीवन चाहते हो तो इसे छोड़ दो। इस प्रकार क्रोध से उसने उसे बहुत ही डाँटा।

मनोवेग विद्याधर अपनी रानी से बहुत ही डर गया अतः उसने हृदय में शोक से व्याकुल होकर पर्णलघ्वी नाम की विद्या से उस चन्दना को भूतरमण नामक वन में ऐरावती नदी के दाहिने किनारे पर छोड़ दिया। पंचनमस्कार का जाप करते हुए चन्दना ने वह रात्रि वहाँ पर बड़े ही कष्ट से बिताई। प्रातःकाल जब सूर्य का उदय हुआ, तब भाग्यवश एक बालक नामक भील वहाँ आ पहुँचा। चन्दना ने उसे अपने बहुमूल्य आभूषण दिये और धर्मोपदेश भी दिया, जिससे वह भील बहुत ही सन्तुष्ट हुआ। वहीं भीम कूट पर्वत के पास भयंकर नामक पल्ली का स्वामी सिंह नाम का एक भील राजा था। उस बालक भील ने चन्दना को ले जाकर उस सिंह राजा को सौंप दी। सिंह पापी था, अतः चन्दना को देखकर उसका हृदय काम से मोहित हो गया। वह चन्दना को अपने आधीन करने के लिए उद्यत हुआ। यह देखकर उसकी माता ने समझाया कि हे पुत्र! तू ऐसा मत कर, यह प्रत्यक्ष देवता है, यदि कुपित हो गई तो कितने ही संताप, शाप और दुःखों को देने वाली होगी। इस प्रकार माता के कहने से डरकर उसने स्वयं दुष्ट होने पर भी चन्दना छोड़ दी। तदनन्तर उस चन्दना ने उस भील की माता के साथ निश्चिन्त होकर कुछ काल वहीं पर व्यतीत किया।

वहाँ भील की माता अच्छी तरह उसका भरण-पोषण करती थी।

तदनन्तर वत्सदेश के कौशाम्बी नगर में वृषभसेन नाम का सेठ रहता था। उसके मित्रवीर नाम का कर्मचारी था, जो कि उस भीलराज का मित्र था। भीलों के राजा ने वह चन्दना उस मित्रवीर के लिए दे दी और मित्रवीर ने भी बहुत धन के साथ भक्तिपूर्वक वह चन्दना अपने सेठ के लिये सौंप दी। किसी एक दिन वह चन्दना उस सेठ को जल पिला रही थी, उसी समय उसके केशों का कलाप छूट गया और जल से भीगा पृथ्वी पर लटक रहा था। उसे वह बड़े प्रयत्न से एक हाथ से सम्भाल रही थी। सेठ की स्त्री भद्रा नामक सेठानी ने जब चन्दना का वह रूप देखा, तो वह शंका से भर गयी। उसने मन में समझा कि हमारे पति का इसके साथ सम्पर्क है। ऐसा मानकर वह बहुत ही कुपित हुई और क्रोध से उसके होंठ काँपने लगे। उस दुष्टा ने चन्दना को सांकल से बाँध दिया तथा खराब भोजन और ताड़न मारण आदि के द्वारा निरन्तर ही उसे कष्ट पहुँचाने लगी। परन्तु चन्दना यही विचार करती थी कि ये सब मेरे द्वारा पूर्व संचित पाप कर्मों का ही फल है। यह बेचारी सेठानी क्या कर सकती है? वह निरन्तर आत्म निन्दा किया करती थी। उसने यह सब समाचार अपनी बड़ी बहन मृगावती के पास भी कहलाकर नहीं भेजे।

किसी एक दिन उस नगरी में आहार के लिये भगवान महावीर आये। उन्हें नगरी में प्रवेश करते देख चन्दना उनके सामने जाने लगी। उसी समय उसके सांकल के सब बन्धन टूट गये। चंचल भ्रमर के समान काले बड़े-बड़े केश चंचल हो उठे और उनसे मालती की माला टूटकर नीचे गिरने लगी। उसके वस्त्र आभूषण सुन्दर हो गये, वह प्रभु की नवधाभक्ति करते हुये भक्तिभाव के भार से झुक गई[1]। शील के माहात्म्य से उसका मिट्टी का सकोरा स्वर्णपात्र बन गया और कोदों का भात शाली चावल का भात हो गया। उस बुद्धिमती चन्दना ने भगवान की विधिपूर्वक पड़गाहना कर आहारदान दिया। इसलिये वहाँ पर पंचाश्चर्य हुए, रत्नों की वर्षा हुई सो ठीक ही है क्योंकि उत्कृष्ट पुण्य के अपने बड़े भारी फल तत्काल ही फलते हैं।

---

1. शीलमाहात्म्यसंभूतपृथुहेमशराविका।
शाल्यन्नभाववत्कोद्रवौदनं विधिवत्सुधीः।।346।।
अन्नमाश्राणयन्तस्मै तेनापाश्चर्यपंचकं।
बन्धुभिश्च समायोगः कृतश्चन्दनया तदा।।347।। उत्तरपुराण पर्व 74

तदनन्तर चन्दना की बड़ी बहन मृगावती, जो कि वहाँ की महारानी थी, वह सारा समाचार सुनकर वहाँ आई। स्नेह से चन्दना का आलिंगन कर सारा वृत्तान्त विदित किया। पिछला समाचार सुनकर बहुत ही व्याकुल हुई और चन्दना को अपने साथ लिवा ले गई। यह देख भद्रा सेठानी और वृषभसेन सेठ दोनों ही भय से घबराये हुये मृगावती के चरणों की शरण में आये। दयालु रानी ने उन दोनोंसे चन्दना के चरणों में प्रणाम करवाया। चन्दना के क्षमा कर देने पर वे दोनों बहुत ही प्रसन्न हुए और कहने लगे कि यह मूर्तिमती क्षमा ही है। चन्दना के समाचार के प्राप्त कर वैशाली से उसके भाई आदि भी मिले और परम आनन्द माना।

इधर जगद्बन्धु भगवान वर्धमान ने भी छद्मस्थ अवस्था के बारह वर्ष व्यतीत किये और जृंभिक नगर के समीप ऋजुकूला नदी के किनारे मनोहर नामक वन के मध्य में रत्नमयी शिला पर सालवृक्ष के नीचे ध्यान में आरूढ हुये। उसी समय उन्हें केवलज्ञान प्रकट हो गया। समवसरण में चन्दना ने आर्यिका की दीक्षा लेकर गणिनी का स्थान प्राप्त किया जिसके अनुशासन में छत्तीस हजार आर्यिकायें थीं।

सुधा—बहन! इस कथानक को सुनकर तो मुझे सही बात का ज्ञान हो गया है अतः दासी का उद्धार हुआ या चन्दना को वेश्या ने खरीदा पुनः सेठ ने वेश्या से खरीदा, यह सब कल्पनाएँ गलत ही हैं।

कनकलता—हाँ बहन! ये सब कल्पनाएँ निराधार अथवा मनगढन्त हैं।

सुधा—किसी विद्वान् ने एक बार उपदेश में कहा कि "भगवान महावीर को आहार देते समय चन्दना के पास मिट्टी का सकोरा सुवर्ण का हो गया और कोदों का भात शाली चावल का भात हो गया यह भी कल्पना है, सर्वथा असत्य है, कहीं ऐसा सम्भव है?"

कनकलता—नहीं बहन! अपने आर्ष ग्रन्थों पर ऐसी अश्रद्धा नहीं करना चाहिये, अन्यथा शील के प्रभाव से सीता के अग्निकुण्ड में कूदने पर वह जल का सरोवर हो गया, सेठ सुदर्शन के शूली का सिंहासन हो गया आदि सब धर्म के फल झूठे ही मानने होंगे। फिर बहन! साक्षात् तीर्थंकर के प्रभाव से इन चमत्कारों का हो जाना सम्यग्दृष्टि श्रद्धालु के लिये अमान्य नहीं कहा जा सकता है।

सुधा—ठीक है बहन! मैं अब अपने पुराण ग्रन्थों का स्वाध्याय करके सही इतिहास को समझूँगी और लोगों के निराधार कथनों का निराकरण भी करूँगी।

नागश्री

चंपापुरी में नागशर्मा ब्राह्मण की एकमात्र लाडली नागश्री कन्या एक दिन सहेलियों के साथ वन में नागपूजा करने गई थी। वहाँ पर दो जैन मुनि मिल गये। उन्हें नमस्कार करके उनके पास बैठ गई। तब मुनिराज ने उसे धर्मोपदेश सुनाया, पुनः पाँच अणुव्रत भी उसे प्रदान कर दिये। आगे क्या होता है, सो वही पढ़िये।

नागश्री अपनी सहेलियों के साथ घर पर पहुँचती है। उस समय एक सहेली उसके पिता से कह देती है कि इसने दिगम्बर मुनि के पास में कुछ व्रत ग्रहण किये हैं।

नागशर्मा—बेटी नागश्री! क्या तुझे मालूम नहीं है कि अपने पवित्र ब्राह्मण कुल में उन नंगों के दिये हुए व्रत नहीं लिये जाते हैं। चूँकि वे अच्छे लोग नहीं होते इसलिये तू उनके व्रत छोड़ दे।

नागश्री—पिताजी! उन मुनियों ने आते समय मुझे कह दिया था कि तेरे पिताजी इन व्रतों को छोड़ देने को कहें तो तू हमारे इन व्रतों को हमें ही वापस कर जाना। अतः आप चलिये मैं उन मुनियों को ही ये व्रत वापस कर आती हूँ।

नागशर्मा—हाँ-हाँ बेटी चल, मुझे तो उन मुनियों पर बहुत ही गुस्सा आ रहा है।

बालिका का हाथ पकड़े नागशर्मा ब्राह्मण घर से निकल पड़ता है और शहर में होते हुये जा रहा है। मार्ग में एक स्थान पर शोरगुल अधिक हो रहा था। नागश्री ने पूछा—

नागश्री—पिताजी! यहाँ क्या हो रहा है?

नागशर्मा ने आगे बढ़कर सारी स्थिति समझ ली और कहा—

नागशर्मा—बेटी! एक आदमी को बाँधकर लोग डंडे से पीट रहे हैं।

नागश्री—क्यों पिताजी! इसने क्या अपराध किया है?

नागशर्मा—एक व्यापारी ने अपना रुपया इससे माँगा, किन्तु यह देने की हालत में नहीं था। तब इसने क्रोध से उसको मार डाला और इस हिंसा के अपराध से ही राजा ने इसे प्राणदण्ड देने की सजा दी है। लोग इसे बाँधकर मारते हुए ले जाकर मृत्युदण्ड देंगे।

नागश्री—तब पिताजी, मुझे भी तो मुनि ने हिंसा के त्यागरूप अहिंसा अणुव्रत दिया है तो उसे क्यों छोड़ दूँ? वह व्रत तो अच्छा ही है।

नागशर्मा—(कुछ सोचकर) अच्छा बेटी! उस एक व्रत को तो तू रख ले, बाकी के व्रत तो मुनि को वापस करना ही है।

आगे बढ़ते हुये नागश्री ने देखा कि एक मनुष्य को लोग बाँधे हुये लिये जा रहे हैं। पिता से पूछने पर यही मालूम हुआ कि यह झूठ बोलकर लोगों को ठगा करता था, इसके अपराध में इसे दण्ड दिया जायेगा।

नागश्री—पिताजी! मुझे भी मुनि ने झूठ बोलने के त्यागरूप सत्य अणुव्रत दिया है अतः मैं उसे भी क्यों छोड़ दूँ?

नागशर्मा—ठीक है बेटी! तू उस व्रत को भी रख ले, बाकी के शेष व्रत तो छोड़ना ही होगा।

इस प्रकार से आगे भी चोरी के पाप से, परस्त्री सेवन के पाप से एवं अति परिग्रह के पाप से दण्डित होते हुये लोगों को देखकर नागश्री ने पिता से यह कहला लिया कि ये शेष व्रत भी तू रख ले। तब अन्त में वह नागशर्मा बोलता है—"देख बेटी! इन पाँच अणुव्रतों को तो तू मत छोड़, चूँकि ये तेरे लिये हितकर ही हैं किन्तु फिर भी तू मेरे साथ उन मुनियों के पास तक चली चल। मैं उनको ऐसी फटकार सुनाऊँगा कि जिससे वे आगे कभी किसी भी कन्या को ऐसे बिना पूछे व्रत न दिया करें। दोनों गुरू के पास पहुँचते हैं। नागश्री तो मुनियों को नमस्कार करती है किन्तु नागशर्मा नमस्कार न करके खड़े-खड़े ही क्रोध में जोर से बोलने लगा।

नागशर्मा—अरे नंगों! तुमने मेरी लड़की को व्रत देकर क्यों ठग लिया? बताओ, तुम्हें इसे व्रत देने का क्या अधिकार था?

उसका क्रोध देखकर बड़े मुनि सूर्यमित्र शांतिपूर्वक बोले—"भाई! मैंने इसे व्रत दिये हैं अपनी लड़की समझकर, चूँकि यह मेरी लड़की है, तेरा तो इस पर कुछ भी अधिकार नहीं है। बेटी नागश्री! इधर आ जा!"

इतना सुनते ही नागश्री जाकर मुनियों के चरण सानिध्य में बैठ गई। तब तो ब्राह्मण देवता घबराये और "अन्याय, अन्याय" चिल्लाते हुए राजा के पास पहुँचे, सारी स्थिति सुना दी। राजा भी अतीव कौतुक के साथ वहाँ आ गये। तमाम भीड़ इकट्ठी हो गई। ब्राह्मण कहता था कि यह लड़की मेरी है और मुनिराज कहते थे कि यह लड़की मेरी है। राजा वहाँ आकर मुनियों को नमस्कार कर बैठ गये। उनके सामने भी यही विसंवाद चलने लगा। तब राजा

बोले–"भगवन्! यह लड़की आपकी सही, पर कैसे? सो आप हम लोगों को विश्वास दिलाइये।"

मुनिराज ने कहा–"बेटी नागश्री! मैंने तुझे पूर्व जन्म में जो भी शास्त्र पढ़ाये हैं, तू उन्हें इन सभी के सामने सुना दे।"

इतना सुनते ही नागश्री ने जन्मांतर में गुरू सूर्यमित्र से पढ़े हुए सारे शास्त्रों को फटाफट सुनाना शुरू कर दिया। राजा आदि सभी लोग सुनकर आश्चर्यचकित हो गये और पूछने लगे–"हे गुरुदेव! यह क्या चमत्कार है? सो हम लोगों को स्पष्ट बतलाइये।"

तब अवधिज्ञानी मुनिराज सूर्यमित्र ने कहना शुरू किया–"राजन्! कौशाम्बी नगर में अग्निभूति और वायुभूति ये दो ब्राह्मण रहते थे। ये मेरे गृहस्थाश्रम के भान्जे थे। इन्होंने मेरे पास में सम्पूर्ण विद्या ग्रहण की थी। किसी समय विरक्त होकर मैंने दीक्षा ले ली और विहार करते हुए कौशाम्बी पहुँच गया। वहाँ पर अग्निभूति ने तो मेरी वन्दना की और भाई के बहुत कुछ कहने पर भी वायुभूति ने मेरी निन्दा करके बहुत कुछ भला-बुरा कह डाला। इस निमित्त से अग्निभूति विरक्त होकर मुनि हो गया जो कि यह मेरे साथ में है। जब अग्निभूति की पत्नी सोमदत्ता को यह विदित हुआ कि मेरे देवर के निमित्त से मेरे पति दीक्षित हो गये हैं, तब उसने देवर से कहा कि–"वायुभूति! आपने मुनि को नमस्कार नहीं किया जिससे दुःखी होकर मेरे पति मुनि हो गये हैं। अतः चलो, उन्हें वापस घर ले आयें। इस बात पर वायुभूति ने भावज के प्रति भी भला-बुरा कहकर उसे एक लात मार दी और आप बाहर चला गया।

मुनिनिंदा के पाप से वायुभूति को कुष्ठ रोग हो गया। वह बड़े कष्ट से मरकर नट के यहाँ गधा हुआ। वहाँ से मरकर जंगली सूअर हुआ। पुनः मरकर कुत्ता हुआ और इस पर्याय से छूटकर चाँडाल कन्या हुआ। वहाँ पर वह कन्या जन्म से अन्धी थी और उसके शरीर से बहुत ही बदबू आ रही थी। माता-पिता ने भी उसे घर से निकाल दिया। तब यह जंबू वृक्ष के नीचे रहकर जामुन फल खा रही थी कि उसी समय हम दोनों मुनि उधर से निकले। इस दुःखी कन्या को देखकर मेरे इस अग्निभूति मुनि को अकारण ही स्नेह उमड़ पड़ा। इसका कारण पूछने पर मैंने बताया कि यह तुम्हारे भाई वायुभूति का जीव है।

तब अग्निभूति मुनि ने उसे संबोधन कर पाँच अणुव्रत दिये जिसके फलस्वरूप वह यह नागशर्मा के घर में नागश्री कन्या हुई है। राजन्! जो मैंने वायुभूति की पर्याय में इसे वेद-वेदांग पढ़ाये थे, आज यह उसी को तुम सबके समक्ष सुना रही थी।

इस कारुणिक घटना को सुनकर राजा को वैराग्य हो गया। वे उसी समय अनेक राजाओं के साथ दीक्षित हो गये। सोमशर्मा ब्राह्मण भी मुनि बन गया और नागश्री कन्या सम्यक्त्व और तपस्या के प्रभाव से स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें स्वर्ग में महर्द्धिक देव हो गई। वह देव वहाँ ये च्युत होकर सुकुमाल हुआ है पुनः जैनेश्वरी दीक्षा लेकर सियारिनी के द्वारा किये गये उपसर्ग को जीतने वाले सुप्रसिद्ध सुकुमाल मुनि हुए हैं।

जिनेन्द्र भगवान के उपदेश के लाभ का फल

जो जिनेन्द्र भगवान के उपदेश को प्राप्त करके मोह, रागद्वेष को नष्ट कर देता है वह अल्पकाल में ही सर्व दुःखों से रहित मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। भाव यह है कि जो कोई भव्य जीव एकेन्द्रिय से विकलेन्द्रिय, फिर पंचेन्द्रिय, फिर मनुष्य होना इत्यादि दुर्लभपने की परम्परा को समझकर अत्यंत कठिनता से प्राप्त होने वाले जिनेन्द्र भगवान के उपदेश को प्राप्तकर व्यवहार और निश्चय रत्नत्रयरूप तीक्ष्ण खड्ग के द्वारा मोह, रागद्वेष रूप शत्रुओं को मार देता है। वही वीर पुरुष संपूर्ण दुःखों का क्षय करके अनाकुलरूप, पारमार्थिक सिद्ध सुख को प्राप्त कर लेता है अर्थात् जिनेन्द्र भगवान के उपदेश का सार यही है कि व्यवहार संयम के द्वारा निश्चय संयम को प्राप्त करके शुद्ध आत्मस्वरूप का अनुभव करना। यदि सम्यग्दर्शन, ज्ञान को प्राप्त करके भी जीव संयमी नहीं हुआ और रागद्वेष मोह का नाश नहीं किया तो पुनः अत्यंत दुर्लभ जिनेन्द्रदेव के उपदेश रूप चिंतामणि को प्राप्त करके भी वह इच्छित फल रूप मोक्ष को नहीं प्राप्त कर सका। अतः जिनोपदेश का फल मुक्ति को प्राप्त कर लेना है और उसके लिए संयम ही प्रधान कारण है। ऐसा समझना।

–प्रवचनसार

क्या हम भी तीर्थंकर बन सकते हैं?

हेमा—बहन सरिता! अब सोलहकारण पर्व आने वाला है। पुरानी महिलायें वो ही घिसी-पिटी रूढ़ियों में फँस जायेंगी। ये बेचारी अपने हित के लिये कोई नया मार्ग नहीं सोचती हैं। बस वही सोलहकारण की पूजा करना, माला फेरना और भावना सुनना। भला इसमें भी कोई धर्म होता है? धर्म तो आत्मा की चीज है। इन बाहरी आडम्बरों में धर्म कहाँ मिलेगा? बस इन्हें तो हाथ का पिसा आटा चाहिये, कुएँ का पानी चाहिये, मर्यादा का मसाला चाहिये। आत्मा की चर्चा का इन्हें भान ही नहीं है।

सरिता—बहन हेमा! तुम इनकी निन्दा मत करो! देखो! भला हम तुम जैसी पढ़ी-लिखी बहनें कोरी आत्मा की चर्चा से क्या तिर जायेंगी? जब तक कि हमारा खान-पान, रहन-सहन नहीं सुधरेगा, आत्मा की चर्चा क्या लाभ प्रदान करेगी! ये पुरानी महिलायें तो कम-से-कम एक घण्टा पूजा करती हैं। दर्शन-विशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं की जाप करती हैं और एक घण्टा मध्याह्न में सभी महिलायें मिलकर भावना सुनती हैं फिर उस पर भी घंटों चर्चा करती हैं। बहन! ये व्रत और भावनाएँ आत्मा को परमात्मा बनाने में परम सहायक हैं। कोरी आत्मचर्चा से आत्मा की सिद्धि नहीं होती है। प्रत्युत् व्रतों के करने से आत्मा की सिद्धि होती है जैसा कि सभी महापुरुषों ने किया है।

हेमा—बहन, क्या इन भावनाओं के भाने से हम लोग भी तीर्थंकर बन सकते हैं?

सरिता—क्यों नहीं, आज की भावना कभी न कभी तो हमारे में उन गुणों को विकसित कर सकती है और तब हम तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर सकती हैं। यद्यपि स्त्री पर्याय में तीर्थंकर प्रकृति नहीं बंधती है और न ही आज के पुरुषों को बँधेगी, क्योंकि केवली और श्रुतकेवली का पादमूल मिले बिना तीर्थंकर प्रकृति नहीं बँध सकती है। फिर भी अगले भव में कभी न कभी ऐसा मौका आ सकता है अतः भावना तो भाते ही रहना चाहिये।

हेमा—इन सोलह भावनाओं के नाम क्या हैं? और उनका लक्षण क्या है?

सरिता—सुनो, क्रम से मैं तुम्हें सुनाती हूँ।

दर्शनविशुद्धि—पच्चीस मल दोषरहित विशुद्ध सम्यग्दर्शन को धारण करना। **विनय सम्पन्नता**—दर्शन-ज्ञान-चारित्र का तप तथा इनके धारकों की

विनय करना। **शीलव्रतों में अनतिचार**—अणुव्रत-महाव्रतों में, गुणव्रत या समिति आदि में अतिचार नहीं लगाना। **अभीक्ष्णज्ञानोपयोग**—सदा जिनागम से अभ्यास में तत्पर रहना। **संवेग**—धर्म और धर्म के फल में अनुराग रखना। **शक्तितस्त्याग**—अपनी शक्ति के अनुसार आहार, औषधि, शास्त्र और अभयदान देना। **शक्तितस्तप**—अपनी शक्ति के अनुसार अनशन आदि तपश्चरण करना। **साधुसमाधि**—साधुओं का उपसर्ग आदि दूर करना। **वैयावृत्य करण**—आचार्य उपाध्याय आदि साधुओं की सेवा सुश्रूषा करना, उपचार करना। **अर्हद्भक्ति**—अर्हंतदेव की भक्ति करना। **आचार्य भक्ति**—आचार्य की भक्ति करना। **बहुश्रुत भक्ति—प्रवचन भक्ति**—जिनागम की भक्ति करना। **आवश्यक अपरिहाणि**—आवश्यक क्रियाओं में दोष नहीं लगाना। **मार्गप्रभावना**—जैनधर्म की प्रभावना करना। **प्रवचनवत्सलत्व**—चतुर्विध संघ में अकृत्रिम अगाध प्रीति रखना।

इन सोलहकारण भावनाओं में दर्शनविशुद्धि भावना का होना बहुत जरूरी है। फिर उसके साथ दो-तीन आदि कितनी भी भावनाएँ हों, या सभी हों, तीर्थंकर प्रकृति का बँध हो सकता है। हाँ, इतनी और विशेषता है कि वह कर्मभूमि का मनुष्य हो, सम्यग्दृष्टि हो पुनः केवली अथवा श्रुतकेवली के पादमूल में इन भावनाओं के बल से विशुद्धि बढ़ाकर तीर्थंकर प्रकृति का बँध कर लेता है।

हेमा—बहन! ये जैनधर्म कितना उदार है जो कि प्रत्येक जीव को धर्मचक्र के नेता—तीर्थंकर बनने तक का अधिकार दे देता है।

सरिता—हाँ बहन! ये जैन पर्व इसीलिये तो आते हैं और यह सोलहकारण पर्व तो वर्ष में तीन बार आता है। भाद्रपद, माघ और चैत्र में सोलहकारण पूजा की जाती है। इन भावनाओं की उपासना की जाती है जिससे कि ये भावनाएँ अपने में अवतरित हो सकें।

हेमा—आज तो प्रायः सामूहिक रूप से और सर्वत्र जैन समाज में तो भाद्रपद में ही सोलहकारण, दशलक्षण, रत्नत्रय आदि व्रत करते हैं किन्तु जिनागम के अनुसार बहुत से लोग माघ और चैत्र में भी व्रत, पूजन, जाप्य आदि करते हैं।

अच्छा बहन! आज मैंने इन पर्वों और भावनाओं का महत्त्व समझा है और इन व्रतों के करने से आत्मा की सिद्धि होती है, यह भी समझ लिया है। अतः अब मैं इन व्रतों के करने वालों को मूर्ख नहीं कहूँगी।

वैयावृत्य

उषा–बहन! वैयावृत्य किसे कहते हैं?

मालती–आचार्य, उपाध्याय आदि दस प्रकार के साधुओं के क्लेश और संक्लेश को दूर करने के लिए जो व्यावृत्त–प्रवृत्त होता है, उसका मन, वचन, काय का जो भी व्यापार–कार्य है वह वैयावृत्य कहलाता है। यह वैयावृत्य एक तप है तथा सोलहकारण भावनाओं में से एक भावना है।

उषा–यह कौन सा तप है और कौन सी भावना है?

मालती–अनशन, अवमौदर्य, वृत्तपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्त-शय्यासन और कायक्लेश ये छह बाह्य तप हैं। प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये छः अन्तरङ्ग तप हैं। इनमें से यह वैयावृत्य अन्तरङ्ग तप है, जो बाह्य तप की अपेक्षा भी महान है। ऐसे ही दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता आदि सोलह भावनाओं के अन्तर्गत यह 'नवमी भावना' है।

उषा–आचार्य आदि दस प्रकार के साधु कौन से हैं?

मालती–आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु और मनोज्ञ ये दस भेद दिगम्बर जैन मुनियों के होते हैं। जो शिक्षा-दीक्षा देते हैं, संघ के नायक हैं, वह **आचार्य** हैं। संघ में पढ़ाने वाले **उपाध्याय** हैं। महोपवासी साधु तपस्वी होते हैं। रोगादि से युक्त साधु **ग्लान** है। स्थविर की संतति **गण** है। दीक्षाचार्य की परम्परा **कुल** है। चातुर्वर्ण श्रमण समूह अथवा मुनि-आर्यिका श्रावक-श्राविका ये **संघ** है। चिरकाल से दीक्षित को **साधु** संज्ञा है और लोक में अतिशय मान्य साधु **मनोज्ञ** कहलाते हैं। इनके क्लेश, कष्ट, उपद्रव, संकट, रोग आदि के प्रसंग में औषधि परिचर्या, सेवा सुश्रूषा आदि करना वह सब वैयावृत्य कहलाता है।

आचार्यों ने तप करने के लिए शक्तितः शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु वैयावृत्य के लिये सर्वशक्त्या[1] शब्द का प्रयोग किया है। बल्कि ग्रन्थकारों ने तो इस वैयावृत्य तप को तपश्चरण का प्राण ही कह दिया है। देखिये–

"सहधर्मियों पर आपत्ति आने पर जो प्रमाद कर देते हैं, वे मनुष्य सर्व सम्पत्तियों को छोड़ देते हैं। क्योंकि यह वैयावृत्य तप, तप का हृदय–प्राण है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है[2]।" वैयावृत्य करने वाले साधु या श्रावक साधुओं

1.शक्तितस्तपः। 2.वैयावृत्यं जिनैरुक्तं कर्त्तव्यं सर्व शक्तितः। (अनगार धर्मामृत, मूल, पृ. 52)

की समाधि में सहयोगी बनते हैं। निर्विचिकित्सा गुण का पालन करते हैं। सहधर्मियों में वात्सल्य करते हैं और भी गुणों के स्वामी बन जाते हैं।

श्रीकृष्ण ने एक मुनिराज के शरीर में कुछ रोग देखा, तब गुरू से प्रश्न किया–भगवन्! इस रोग के लिए क्या औषधि है? मुनि ने कुछ नाम बता दिया। वैद्य को बुलाकर श्रीकृष्ण ने उस औषधि को समझा। पुनः रसोईघर में उस औषधिमिश्रित लड्डू बनवा दिये। मुनि को आहार के समय वे लड्डू दिये गये जिससे उनका रोग शान्त हो गया। उस पुण्य के प्रसाद से श्रीकृष्ण भविष्य में तीर्थंकर होवेंगे।

वास्तव में यह शरीर ही धर्म का साधन है। यदि इसमें वात, पित्त, कफ आदि दोष प्रकुपित हो जाते हैं तब धर्म साधना में भी बाधा उपस्थित हो जाती है। ऐसे प्रसंग पर श्री कुन्दकुन्द देव ने भी प्रवचनसार में मुनियों को साधुओं की वैयावृत्य के लिये असंयमियों से, श्रावकों से बोलने की छूट दी है। इससे भी वैयावृत्य का महत्त्व विशेष रूप से दिख जाता है। समयोचित सेवा करना ही वैयावृत्य है और गुरू के अनुकूल प्रवृत्ति करना भी वैयावृत्य है।

एक समय श्री धर्मघोष मुनिराज चम्पानगरी में आहार करके तपोवन की ओर आ रहे थे। चलने के अधिक परिश्रम से वे अत्यधिक थक गये तब एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। उस समय वे प्यास की बाधा से व्याकुल हो रहे थे। गंगादेवी उन्हें प्यासा देखकर एक कलश में पवित्र जल लेकर वहाँ आई और बोली–'हे भगवन्! आप इस ठण्डे जल को पीकर प्यास शान्त कीजिये।' मुनि ने कहा–'देवि! तूने अपना कर्तव्य किया सो ठीक, परन्तु हमारे लिये देवों द्वारा दिया गया आहार-पानी काम नहीं आता।' सुनकर देवी चकित रह गई। उसी समय वह विदेह क्षेत्र में गई और वहाँ भगवान के समवसरण में प्रश्न किया कि–'हे भगवन्! एक प्यासे मुनि को मैं जल पिलाने गई किन्तु उन्होंने नहीं पिया सो क्या कारण है? दिव्यध्वनि से उसे उत्तर मिला कि–"मुनि लोग देवों के हाथ से आहार नहीं लेते हैं।" देवी उत्तर पाकर निरूपाय हुई फिर भी उसने सोचा कि हमें कुछ तो वैयावृत्य करके इनकी प्यास को शान्त करना चाहिये। वहाँ से आकर मुनि के चारों तरफ सुगन्धित ठण्डे जल की वर्षा शुरू कर देती है जिससे ठण्डी-ठण्डी हवा लगकर मुनि को एकदम शान्ति हो जाती है। इसके बाद वे मुनिराज ध्यान में आरूढ़ होकर तत्क्षण ही केवली हो जाते हैं। स्वर्ग

से देव उनकी पूजा करने आ जाते हैं और वहाँ पर गन्धकुटी की रचना हो जाती है। यह थी देवी की वैयावृत्ति!

श्री समन्तभद्र स्वामी ने तो अतिथिसंविभाग व्रत के स्थान पर वैयावृत्य नाम का ही अन्तिम शिक्षाव्रत लिया है और उसमें मुनियों के आहार-दान आदि पर अत्यधिक जोर दिया है। बल्कि यहाँ तक कहा है कि "गृहस्थी में पंचसूना आदि से जो हमेशा पाप संचित होते रहते हैं उनके क्षालन का यदि कोई उपाय है तो एक गृहवास से रहित मुनियों को आहार देना जैसे कि रुधिर से रंगे हुए वस्त्र को जल धोकर साफ कर देता है वैसे ही अतिथियों को दिया गया आहार गृहस्थ के पापों को धोकर साफ कर देता है।

उषा—यह तो आपने साधुओं के लिये वैयावृत्ति का विधान किया किन्तु हम श्रावक-श्राविकायें गृहस्थों की भी वैयावृत्ति कर सकते हैं या नहीं?

मालती—क्यों नहीं, गृहस्थों में भी पूज्य पुरुषों की, गुणीजनों की, घर के बड़े जनों की और तो क्या, छोटे हों या बड़े, स्त्री हों या पुरुष हों, सभी की समयोचित वैयावृत्ति करनी चाहिये।

बात यह है कि "धर्म धर्मात्माओं के बिना नहीं रहता है।" इसलिये रत्नत्रयरूप धर्म को धारण करने वाले साधुओं की वैयावृत्ति करना एक तप है। शेष लोगों की वैयावृत्ति भी धर्म है, कर्तव्य है, सेवा है। इससे भी परस्पर में स्नेह बना रहता है। इसलिये गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी यथोचित सभी की सेवा-वैयावृत्ति करनी ही चाहिये। देखो! जीवंधर ने कुत्ते को भी महामन्त्र सुनाकर उसे सान्त्वना दी यह भी तो एक वैयावृत्ति ही है।

उषा—सच है, इस वैयावृत्ति तप का महत्त्व अचिन्त्य ही है।

सरस्वती मंत्र

ॐ ह्रीं श्रीं वद वद वाग्वादिनि भगवति सरस्वति ह्रीं नमः।

प्रियंगु सुन्दरी

कांपिल्य नाम का एक प्रसिद्ध शहर था। वहाँ के राजा का नाम नरसिंह था। ये राजा बहुत ही धर्मात्मा और बुद्धिमान थे। सदा न्याय नीतिपूर्वक अपने राज्य का संचालन करते थे। इसलिये सारी प्रजा उनसे प्रसन्न रहती थी।

राजा के मंत्री का नाम सुमति था। इनकी पत्नी का नाम धनश्री और पुत्र का कडारपिंग था। वह दुर्व्यसनी था।

इसी नगर में एक कुबेरदत्त सेठ रहते थे, ये बड़े ही धर्मात्मा थे, सतत देवपूजा, गुरूपास्ति आदि क्रियाओं में लगे रहते थे। इनकी पत्नी का नाम प्रियंगु सुन्दरी था। यह जैसे सौंदर्य में विशेष थी, वैसे ही पातिव्रत्य धर्म में और बुद्धि में भी बहुत ही विशेष थी।

एक दिन यह प्रियंगुसुन्दरी जिनमंदिर जा रही थी। उधर से कडारपिंग निकला। उस महिला के रूप को देखकर वह उन्मत्त हो उठा। वहीं पर कुछ क्षण के लिये स्तब्ध सा खड़ा रह गया। पुनः किसी से उसने पता लगाया कि यह महिला किसकी भार्या है। वह जैसे-तैसे अपने घर पहुँचा और प्रियंगुसुन्दरी को प्राप्त करने की चिंता में बेचैन हो गया। जब माता-पिता को विदित हुआ कि वह प्रियंगुसुन्दरी को प्राप्त कर सका तो ठीक, अन्यथा विष खाकर प्राण देने को तैयार है तो वे बहुत चिंतित हो उठे। लाखों उपायों से पुत्र को समझाने की चेष्टा की लेकिन सब कुछ शिक्षा व्यर्थ रही। तब बुद्धिमान सुमति मंत्री भी पुत्र के मोह में पड़कर उसे जीवित रखने की इच्छा से उसकी पाप-वासना को पूरी करने के लिये उपाय सोचने लगे। वे पुत्र की आशा पूरी करने के लिये कुछ षड्यंत्र बनाकर राजा के पास पहुँचे। कुछ इधर-उधर की बात होने के बाद मंत्री जी बोले—"राजन्! रत्नद्वीप में एक किंजल्क जाति के पक्षी होते हैं, वे जिस शहर में रहते हैं वहाँ महामारी, दुर्भिक्ष, रोग, अपमृत्यु आदि नहीं होते हैं तथा उस शहर पर शत्रुओं का चक्र नहीं चल पाता है और चोर वगैरह उसे किसी प्रकार से हानि नहीं पहुँचा सकते हैं।" तब महाराज ने पूछा—"वे पक्षी अपने देश में लाये जा सकते हैं क्या?" मंत्री ने कहा—"हाँ महाराज! उनके लाने का उपाय आपके लिये तो बहुत ही सरल है। अपने शहर में जो कुबेरदत्त सेठ हैं उनका आना-जाना प्रायः वहाँ हुआ करता है और वे हैं भी कार्यकुशल, इसलिये उन पक्षियों को लाने के लिये आप उन्हें आज्ञा दीजिये।"

अपने मंत्री की इस विशेष बात को सुनकर राजा किंजल्क पक्षी को देखने को अकुला उठे। भला ऐसी आश्चर्य उपजाने वाली बात सुनकर किसे ऐसी अपूर्व वस्तु की चाह नहीं होगी और इसीलिये राजा ने भी शीघ्र ही राजसभा में कुबेरदत्त सेठ को बुलवा लिया तथा उसे सारी बातें समझाकर रत्नद्वीप जाने के लिये आदेश दे दिया।

इस अभूतपूर्व बात को सुनकर बेचारे कुबेरदत्त सेठ विस्मय में पड़ गये। पुनः सरल भाव से उन्होंने राजा की आज्ञा शिरोधार्य कर ली और घर पहुँचे। अपनी प्रिया प्रियंगुसुन्दरी से सारी बातें सुना दीं। सुनते ही प्रियंगुसुन्दरी के मन में कुछ संदेह उत्पन्न हुआ। उसने कहा–"स्वामिन्! जरूर कुल दाल में काला है। आप ठगे गये हो। किंजल्क पक्षी की बात बिल्कुल असम्भव है। भला कहीं पक्षियों का भी ऐसा प्रभाव हुआ करता है? तब क्या रत्नद्वीप में किसी को कोई कष्ट नहीं होता होगा? ये सब बातें बिल्कुल झूठ हैं। अपने राजा तो सरल-स्वभाव के हैं, सो जान पड़ता है कि वे भी किसी के कुचक्र में आ गये हैं। उस सुमति मंत्री का पुत्र कडारपिंग सप्तव्यसनों में पारंगत है। वह जब तब किसी-न किसी भद्र घराने की महिला के साथ व्यभिचार करके बदनामी उठा रहा है। एक दिन मैं मंदिर जा रही थी, उस समय वह रास्ता चलते हुए रुक गया था और बार-बार मेरी ओर निहार रहा था। उसकी पापभरी दृष्टि से पता चल रहा था कि इसके भाव गलत हैं। आप निश्चित ही विश्वास कीजिये। वह मंत्री अपने पुत्र की इच्छापूर्ति के हेतु ही आपको विदेश भेजना चाहता है, ऐसा मुझे प्रतीत हो रहा है।"

पत्नी की इस प्रकार की सारी बातों को सुनकर कुबेरदत्त को भी जंच गया और वे कहने लगे–"हो सकता है प्रिये! आपका अनुमान मुझे भी सच ही प्रतीत हो रहा है। अब अपने को कुछ ऐसी युक्ति निकालनी होगी कि जिससे राजा की आज्ञा का भी पालन हो जाये और आपके ऊपर किसी प्रकार की आपत्ति का प्रसंग न आये। प्रियंगुसुन्दरी ने कहा–"सबसे बढ़िया उपाय यही है कि अब आप यहाँ से तो जहाज द्वारा रवाना हो जायें जिससे कि किसी को सन्देह न हो और रात होते ही जहाज को आगे जाने की आज्ञा देकर आप वापस लौट आइये। फिर देखिये कि क्या होता है? यदि मेरा अनुमान सत्य निकले तो फिर आपको जाने की कोई भी आवश्यकता नहीं है और यदि नहीं, तो फिर दस-पन्द्रह दिन बाद आप चले जाइएगा।

कुबेरदत्त ने वैसा ही किया। जहाज को आगे भेजकर वापस आकर चुपचाप घर में छुपकर ठहर गया।

जब कडारपिंग को कुबेरदत्त के विदेश जाने का पता चला, तब उसकी प्रसन्नता का ठिकाना ही न रहा। वह पापी दुराचारी एक रात को भी निकलने को समर्थ नहीं हुआ अतः वह काम से अन्धा हुआ शीघ्र ही कुबेरदत्त के घर आ पहुँचा। इधर प्रियंगुसुन्दरी ने भी उसी दिन ही उसके स्वागत की पूरी तैयारी कर ली थी। उसने विष्ठागृह (पाखाना) के स्थान को स्वच्छ कराकर उसमें बिना निवार का एक पलंग बिछवाकर उस पर एक चादर डलवा दी थी। जैसे ही मंत्रीपुत्र कडारपिंग महोदय ऊपर पहुँचे, प्रियंगुसुन्दरी ने भी मधुर मुस्कान द्वारा उसका स्वागत किया और संकेत करके उसी कमरे में लिवा ले गयी। पुनः नम्र निवेदन किया कि आप यहाँ विराजिये। कडारपिंग अपनी ऐसी आव-भगत देखकर मन ही मन फूल उठा और अपनी आशा की सफलता पर गद्‌गद हो शीघ्र ही उक्त पलंग पर बैठते ही बेचारा धड़ाम से नीचे विष्ठागृह में जा गिरा। वहाँ की भीषण दुर्गन्धि ने उसकी नाक में प्रवेश किया। वह गन्दगी से लथपथ हो गया। एक क्षण तो वह समझ ही नहीं सका कि यह क्या हुआ? मैं यहाँ कहाँ आ गया हूँ? फिर कुछ क्षण बाद सारी स्थिति उसकी समझ में आ गई। वह अत्यर्थ आकुल-व्याकुल हो रहा था और सोच रहा था कि–"अहो! पाप का फल मुझे तत्क्षण ही मिल गया है। अब मैं क्या करूँ? कैसे इस नरक कूप से निकलूँ? क्या होगा?"

जैसे नारकी नरक में दुःख उठाते हैं, वैसे ही वह दुराचारी वहाँ घृणित स्थान में पड़ा हुआ दुःख उठा रहा था। इस तरह उसे वहाँ सड़ते हुए छह माह व्यतीत हो गये थे, तब तक कुबेरदत्त का जहाज भी रत्नद्वीप से वापस आ गया।

जहाज का आना सुनते ही सारे शहर में शोर मच गया कि कुबेरदत्त सेठ किंजल्क पक्षी लेकर आ गये हैं। इधर कुबेरदत्त ने रात में जहाज को रोक दिया और स्वयं कडारपिंग को विष्ठागृह से निकलवाकर उसे अनेकों प्रकार के पक्षियों के पंखों से खूब सजाया और उसका काला मुँह करके एक विचित्र ही जीव बना दिया। इसके बाद सेठ ने उसके हाथ-पैर बाँधकर उसे एक लोहे के पिंजड़े में बन्द कर उसे जहाज पर पहुँचा दिया। पुनः स्वयं भी रात में ही उस जहाज पर पहुँच गये। प्रातः बहुत से लोगों के साथ उस

पिंजड़े को लेकर राजसभा में उपस्थित हो गये। उस समय वहाँ पर न जाने कितने लोग इस नये किंजल्क पक्षी को देखने के लिये उपस्थित थे और चारों तरफ से जन-समुदाय का तांता लगा हुआ था। वहीं राजसभा में मंत्री सुमतिचन्द्र भी उपस्थित थे।

सेठ कुबेरदत्त ने राजा का यथोचित अभिवादन किया और उनकी आज्ञा के अनुसार उस पिंजड़े को खोलकर उस पक्षी को बाहर निकालकर वहाँ बिठा दिया। राजा, मंत्री और सारे लोग अतीव आश्चर्य को प्राप्त हुए उस विचित्र पक्षी को देख रहे थे। तब गौर से देखकर राजा ने कहा कि यह तो एक मनुष्य जैसा दिख रहा है। क्या बात है? कुबेरदत्त जी! कहिये क्या रहस्य है? तब कुबेरदत्त ने सारी घटना सुना दी। बेचारे मंत्री उस समय हैरान थे कि यह क्या हो गया? राजा को मंत्री के ऊपर बहुत ही गुस्सा आया और उन्होंने उसका भी मुँह काला कर गधे पर बिठाकर सारे शहर में घुमाया। कडारपिंग को अपने दुराचार का फल इसी भव में मिल गया और वह खोटे परिणामों से मरकर नरक में चला गया। शहर के समस्त स्त्री-पुरुषों ने उस पिता-पुत्र को धिक्कारते हुए कुशील पाप की महानिन्दा की तथा प्रियंगुसुन्दरी की खूब प्रशंसा की। राजा ने भी प्रियंगुसुन्दरी और कुबेरदत्त का खूब ही सम्मान किया। सचमुच में यह एक शीलव्रत सर्वव्रतों में सर्वोपरि है, ऐसा समझना चाहिये।

स्वास्थ्य मंत्र

ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं
आरोग्य लाभं कुरु कुरु स्वाहा।

पर्दाफाश कर दिया

एक महिला पंगु के साथ वार्तालाप कर रही है।

महिला—प्रियतम! देखो तो सही, हम कितने भाग्यशाली हैं। इस मंगलपुर शहर में आकर रहते हुए हम लोगों को कितने दिन हो गये। घर-घर में मेरे सतीत्व की चर्चा चल रही है किन्तु अभी तक यहाँ का राजा मेरा गाना सुनना, मेरा दर्शन करना महापाप समझता है। चूँकि वह स्त्रीमात्र का मुख ही नहीं देखता है। सुनने में तो ऐसा आया है कि कोई चाहे जैसी अतिशय रूपवती स्त्री हो, या महागुणवती हो या विदुषी हो किन्तु वह किसी का न मुख देखता है, न उनके शब्द ही सुनता है और न उनकी छाया या चित्रों का ही अवलोकन करता है।

पंगु—अरे! इतना स्त्री-विरक्त (जोरों से हँसकर) मालूम पड़ता है कि उसने स्त्रियों के भोग-सुख का आस्वाद नहीं लिया है। नहीं तो, अवश्य ही स्त्री का दास बन जाता। खैर! यदि वह एक बार भी मेरा मनमोहन गायन सुन ले और उसके साथ-साथ ही तुम्हारे रूप को देख ले तो उसकी सारी स्त्रीविरक्त भावना कहीं की कहीं पलायमान हो जायेगी।

महिला—हाँ, हाँ प्रियतम! अपनी मनोकामना सफल हो गई। अभी कर्मचारीगण बहुत कुछ भेंट लेकर अपने को आमंत्रित करने आये थे कि चलो राजा तुम्हारे सतीत्व से प्रभावित हो गया है और अब वह तुम्हें राजदरबार में पधारने की स्वीकृति दे चुका है अतः अब हमें जल्दी ही तो वहाँ पहुँचना है, इसीलिये तो मैं सज-धज रही हूँ।

पंगु—किंतु मैंने तो सुना था कि यहाँ का राजा सभी को खूब दान देता है। जन्मों-जन्मों की गरीबी को धो डालता है। लेकिन.....

महिला—लेकिन क्या? प्रियतम जल्दी बताइये।

पंगु—प्रिये! क्या बताऊँ। सचमुच में मुझे तो अतिविश्वस्त राजदरबार के ड्योढ़ीवान ने ही बताया है कि आज तक उसने पंगुओं को, अपंगों को, लंगड़ों को, एक कण भी अन्न नहीं दिया बल्कि उन्हें देखते ही अपने राज्य से निकलवा देता है। इस गाँव में कोढ़ी हैं, अन्धे हैं, तमाम अंगहीन और भिखारी हैं किन्तु यही कारण है कि इतने दिन हो गये, यहाँ आकर अपने को भी कोई पंगु दिखाई नहीं दिया अतः वह राजा हमें राजदरबार में कैसे बुलायेगा?

महिला—ओहो! यह बात तो हमें भी मालूम है कि यहाँ का राजा महिलाओं का और पंगुओं का द्वेषी है, फिर भी उसने अपने को बुलाया है इसीलिये तो मैंने पहले ही आपसे निवेदन किया है कि अपने अहोभाग्य दिख रहे हैं, जिससे आज ऐसा प्रभावशाली राजा भी अपने माहात्म्य को समझ चुका है।

पंगु—प्रिये! यह तो बताओ कि क्या इस राजा के रानी नहीं है।

महिला—नहीं, नहीं प्रियतम! स्त्रीमुख को भी नहीं देखने वाले के भला रानी का क्या काम है?

पंगु—तो फिर इसके सन्तान भी नहीं होगी?

महिला—यह भी क्या सोचने की बात है? रानी के बिना राजा के सन्तान कहाँ से होगी?

पंगु—तो पुनः भविष्य का राज्य-भार कौन सँभालेगा?

महिला—प्राणेश्वर! इसकी अपन को क्या चिन्ता? अरे! अपने को तो पुरस्कार पाना है और यश लूटना है। अपने सतीत्व का झण्डा देश-देश में, गाँव-गाँव में, नगर-नगर में और डगर-डगर में फहराना है। बस चलो, चलें, जल्दी करो, अब देरी न करो, कहीं राजा के भाव पुनः बदल गये तो मुश्किल हो जायेगा।

पंगु—हूँ, किन्तु प्रियतमे! मुझे डर लग रहा है।

महिला—डर! अरे! क्यों क्या बात है प्राणनाथ? बतलाइये तो सही।

पंगु—महारानी जी! मैं क्या कहूँ मेरे मन में यह आ रहा है कि ऐसा स्त्रीद्रोही और पंगु-द्रोही राजा भी यदि अपने गायन को सुनना चाहता है, अपने दर्शन करना चाहता है तो फिर यदि कहीं वह तुम पर आसक्त हो गया तो मेरा क्या होगा?

महिला—(हँसकर) प्रियतम! आपके लिए तो मैंने अयोध्या के नरेश देवरति महाराज को जलांजलि दे दी। अहो! देखो तो सही, वे मेरे प्राणवल्लभ मुझे कितना प्यार करते थे। मेरे ही मोह में उन्होंने अपने राज्यपाट को छोड़ा। मेरे ही प्रेम में वे इतने अंधे हो रहे थे कि चाहे राज्य पर कोई आक्रमण करे, चाहे कुछ भी अनर्थ हो, प्रजा में अन्याय हो किन्तु उन्हें तो मेरे आगे किसी की परवाह ही नहीं थी। यही कारण हुआ कि मन्त्रियों ने अनेक प्रकार से महाराज को शिक्षाएँ दीं। अनेक अनुनय-विनय किये और जब महाराज देवरति ने एक

भी न मानी, तब मंत्रियों ने उन्हें और हमें राज्य से निकाल दिया तथा मेरे पुत्र जयसेन को अयोध्या का राजा बना दिया। बताइये! क्या हमारे यहाँ राज्य-वैभव कम था? क्या हमें राजा का प्यार कम था? क्या हमें उत्तम-उत्तम भोग सामग्री उपलब्ध नहीं थी? फिर भी मैंने क्या किया? आपको तो मालूम है वन में आकर भी राजा मुझमें इतना आसक्त था कि जिसकी कोई सीमा नहीं थी।

एक दिन मैंने तुम्हारे मधुर गायन को सुना और तुम्हारे प्रति आसक्त हो गयी। फिर देखा कि नहीं, मैंने राजा को कैसी युक्ति के साथ समाप्त किया! मुझमें विद्या, बुद्धि की कुछ भी कमी नहीं है। हाँ! तो मैं अपने पतिदेव के सामने रोने लगी—नाथ! आज आपके जन्मगाँठ का दिन है और मैं अभागी क्या करूँ? यहाँ तो एक पैसा भी नहीं है। इस पर मेरे स्वामी ने मुझे समझाया कि प्रिये! तुम्हीं मेरे लिए सब कुछ हो। मैंने जब तुम्हारे लिये राज्यभार, अयोध्या के आधिपत्य को भी छोड़ दिया है, तो फिर वर्षगाँठ वगैरह उत्सव क्या मायने रखता है? मेरे लिये स्वर्ग से भी बढ़कर तुम्हारा अनुराग है। अस्तु, फिर भी मैंने एक फूलों की माला बनाई और उसके धागे में एक कांटा लगा दिया पुनः राजा के सत्कार के बहाने उन्हें यमुना नदी के किराने बिठाकर माला पहनाकर वह काँटा उनके गले में ऐसा चुभोया कि वे व्याकुल हो उठे। फिर उन्होंने समझा कि मेरी वल्लभा मेरे जन्मगाँठ के उपलक्ष्य में यह कोई विलक्षण विधि कर रही है। इसी बीच में आपने देखा कि मैंने राजा को नदी में डाल दिया और सदा-सदा के लिये उनको जलांजलि दे दी।

प्रियतम! तभी से तो मैं आपकी दासी हो गयी हूँ। आपकी सेवा में तत्पर रहती हूँ और सेवा करते-करते आज मैं महासती प्रसिद्ध हो गई हूँ। आपको टोकरे में रखकर सिर पर उस टोकरे को विराजमान कर देश-देश में घूमकर गाना गाकर अपना और आपका पेट भर रही हूँ। अरे! देखो तो सही! मैं आपके ऊपर अपने सौभाग्य को, अपने राजरानी के सुख को और अपने धर्म का बलिदान कर चुकी हूँ। फिर भी आप आज मुझ पर शंका कर रहे हैं। अरे! ऐसे-ऐसे सैकड़ों राजा भी मेरी दृष्टि में धूल हैं।

पंगु—(प्रसन्न होकर गले लगाकर) हाँ, हाँ प्रिये! सचमुच तुम मेरी प्राणप्यारी हो लेकिन आशंका इसीलिए हो उठती है कि जब तुमने अपने पतिदेव को कुछ नहीं गिना तो मैं तो एक भिखारी, अपंग और कुरूप हूँ, निर्धन हूँ, हीन हूँ, महा

नीच हूँ, दीन हूँ और आपके पतिदेव अयोध्या के अधिपति अचिन्त्य वैभव के धनी थे, अनेक गुणों के पुँज थे, देवों से भी अधिक सुन्दर थे और क्षत्रिय वीर थे, तेजस्वी थे, महाप्रतापी थे और आपमें इतने आसक्त थे कि अपने राज्य को भी ठुकरा दिया किन्तु आप जैसी महारानी ने मुझ जैसे अपंग पर आसक्त होकर उनको नदी में ढकेल दिया, तब आप क्या अन्य किसी राजा पर आसक्त होकर मुझ जैसे व्यक्ति को नहीं छोड़ सकती हैं?

महिला—प्रियतम! देखो, देखो पुनः कर्मचारीगण आ रहे हैं। जल्दी करो और चलो अपने सतीत्व को विश्वव्यापी बनाएँ।

रक्तारानी शीघ्र ही पंगु को टोकरे में बैठाकर टोकरे को मस्तक पर धारण कर चल पड़ती है और राजदरबार में पहुँचते ही ''महासती की जय, महासती की जय'' के नारे गूँज उठते हैं। महाराज पर्दे की आड़ में उन्हें बिठाते हैं और आप उन दोनों महाभाग्य का मुख न देखकर मात्र गाना सुनाने का आदेश देते हैं। सभा में बैठे हुए महामात्य सेनापति और सभासदगण गाना सुनकर झूम उठते हैं तथा मुक्तकण्ठ से भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगते हैं। महाराजा उसी समय अपनी प्रिय महारानी के स्वर को पहचान कर शीघ्र ही पर्दा खोलकर पर्दाफाश कर देते हैं।

राजा—मंत्रियों! सभासदों! आप लोग ध्यान से सुनें। यह महासती हैं और सचमुच में यह एक चमत्कारी गाना हुआ है। यह चमत्कार युग-युग तक विश्व में सर्वत्र फैलता ही चला जायेगा। अहो! यह मेरी रक्ता नाम की महादेवी थी। इसी के प्रेम में पागल होकर मैंने अपने अयोध्या के राज्य को ठुकराया था और इसी ने अपंग में आसक्त होकर मेरी जन्मगाँठ मनाते हुए मेरे गले में हार का फन्दा लगाकर मुझे नदी में धकेल दिया था। फिर भी आयु कर्म शेष था, मैं बच गया और आपके पट्टहाथी ने इस मंगलपुर के बगीचे में वृक्ष के नीचे बैठे हुए मेरा अभिषेक करके लाकर मुझे यहाँ का राजा बना दिया है। बस अब मैं राज्य सुख से तृप्त हो चुका हूँ। अब मुझे केवल अपनी आत्मा का उद्धार करना है। जिस पुण्य ने मेरी यमुना नदी में रक्षा की थी, आज उसी पुण्य के फल से मैंने इतने दिन आप लोगों की सेवा की है। अब मैं जैनेश्वरी दीक्षा लेकर अपनी आत्मा का हित करूँगा।

मंत्रीगण—महाराज! आपकी इस न्यायपूर्ण राज्य व्यवस्था में हम लोग और यहाँ की प्रजा अतीव सन्तुष्ट थी, अब हमें ऐसा योग्य राजा कहाँ मिलेगा?

राजा—मंत्रियों, तुम अयोध्या से मेरे सुपुत्र जयसेन को बुला लो।

अयोध्या नरेश राजा जयसेन आते हैं और पिता के दर्शन से अपने को परम सन्तुष्ट करते हुए पिता के द्वारा प्रदत्त मंगलपुर के राज्य का भी भार संभाल लेते हैं। इधर महाराज देवरति महासती रक्तादेवी के सतीत्व का पर्दाफाश करके जैनेश्वरी दीक्षा लेकर अपनी आत्मा का कल्याण करते हैं। घोराघोर तपश्चरण करते हुए अन्त में समाधिपूर्वक मरण करके स्वर्ग के उत्तम सुखों को प्राप्त कर लेते हैं। इधर महासती के सतीत्व के पर्दाफाश की चर्चा सारे मंगलपुर शहर में व्याप्त हो जाती है जोकि आज तक ग्रन्थों में चली आ रही है।

उषा वंदना

उठो भव्य! खिल रही है उषा, तीर्थ वंदना स्तवन करो।
आर्तरौद्र दुर्ध्यान छोड़कर, श्री जिनवर का ध्यान करो।।1।।

अष्टापद से ऋषभदेव जिन, वासुपूज्य चम्पापुर से।
ऊर्जयन्त से श्री नेमीश्वर, मुक्ति गये वंदों रुचि से।।2।।

पावापुरी सरोवर से इस, उषा काल में श्री महावीर।
विधुत क्लेश निर्वाण गये हैं, नमो उन्हें झट हो भवतीर।।3।।

बीस जिनेश्वर मोक्ष गये हैं, श्री सम्मेद शिखर गिरि से।
और असंख्य साधुगण भी, शिव गये उन्हें वंदों रुचि से।।4।।

जिनवर गणधर मुनिगण की, निर्वाण भूमियाँ सदा नमो।
पंचकल्याणक भूमि तथा, अतिशययुत क्षेत्र सभी प्रणमो।।5।।

शालिपिष्ट भी शर्करयुत, माधुर्य स्वादकारी जैसे।
पुण्य पुरुष के पद रज से ही, धरा पवित्र हुई वैसे।।6।।

त्रिभुवन के मस्तक पर सिद्ध-शिला पर सिद्ध अनंतानंत।
नमो नमो त्रिभुवन के सभी, तीर्थ को जिससे हो भव अंत।।7।।

तीर्थक्षेत्र वंदन से नंतानंत, जन्म कृत पाप हरो।
सम्यक् ''ज्ञानमती'' श्रद्धा से, शीघ्र सिद्ध सुख प्राप्त करो।।8।।

अक्षय तृतीया

जगद्गुरू भगवान ऋषभदेव ने दीक्षा लेकर छह महीने का योग धारण कर लिया था। जब छह महीने पूर्ण हो गये, तब वे प्रभु मुनियों की चर्याविधि बताने के लिये आहारार्थ निकले। यद्यपि भगवान को आहार की आवश्यकता नहीं थी, फिर भी मोक्षमार्ग को प्रगट करने के लिये पृथ्वीतल पर विचरण करने लगे।

उस समय लोग दिगम्बर मुनियों के आहार की विधि को नहीं जानते थे। अतः कोई-कोई भगवान के पास आकर उन्हें प्रणाम करते और उनके पीछे-पीछे चलने लगते, कोई बहुमूल्य रत्न लाकर भगवान के सामने रखते और ग्रहण करने की प्रार्थना करते कि हे देव! प्रसन्न होइये और स्नान करके भोजन कीजिये। कोई हाथी, घोड़ा, पालकी आदि वाहन लेकर आते और भेंट करते। कितने ही लोग रूप-यौवन सम्पन्न कन्याओं को लाते और कहते कि प्रभो! आप इन्हें स्वीकार कीजिये। आचार्य कहते हैं कि इन लोगों की मूर्ख चेष्टा को धिक्कार हो, जो ऐसी-ऐसी चेष्टा कर रहे थे। इस प्रकार जगत में आश्चर्यकारी गूढ़चर्या से भ्रमण करते हुए भगवान के छह मास और व्यतीत हो गये।

अनन्तर भगवान ऋषभदेव हस्तिनापुर पधारे। उस समय वहाँ के राजा सोमप्रभ कुरूवंश के शिखामणि थे और उनके भाई श्रेयांस कुमार थे। श्रेयांस कुमार ने उसी रात्रि के पिछले प्रहर में सुमेरू पर्वत, कल्पवृक्ष, सिंह, बैल, सूर्य-चन्द्र, समुद्र और व्यंतर देवों की मूर्ति, ऐसे सात स्वप्न देखे थे। प्रातः पुरोहित ने इन स्वप्नों का फल यही बतलाया था कि जिनका सुमेरू पर्वत पर अभिषेक हुआ है, ऐसे कोई देव आज आपके घर पर आयेंगे। उसी समय नगर में भगवान के दर्शनों के लिए दौड़ते हुए जनों से बहुत बड़ा कोलाहल व्याप्त हो गया। इधर सिद्धार्थ के द्वारपाल ने प्रभु के आगमन की सूचना दी। दोनों भाई उठ खड़े हुए और बाहर आये। भगवान को देखते ही गद्गद हो उन्हें नमस्कार किया और उनकी तीन प्रदक्षिणायें दीं। तत्क्षण ही राजा श्रेयांस को अपने पूर्वभवों का स्मरण हो आया और आहारदान देने की सारी विधि याद आ गयी। जब वज्रजंघ और श्रीमती ने वन में चारण मुनि को आहार दान दिया था। उस समय का दृश्य ज्यों का त्यों उपस्थित हो गया। राजा वज्रजंघ का जीव ही भगवान ऋषभदेव हुए हैं और रानी श्रीमती के जीव ही राजा श्रेयांस हुए हैं।

उस समय राजा श्रेयांस कुमार ने अपने बड़े भाई सोमप्रभ और भाभी लक्ष्मीमती के साथ बड़ी ही भक्ति से प्रभु का पड़गाहन करके अन्दर लाकर नवधा भक्तिपूर्वक उनके हाथों की अंजुली में शुद्ध प्रासुक इक्षुरस का आहार दिया। उसी समय आकाश में देवों का समुदाय उमड़ पड़ा।

रत्नों की वर्षा, पुष्पों की वर्षा, मंद सुगन्धित वायु, दुन्दुभि बाजे और जय-जयकार के नाद से आकाश तथा भूमण्डल व्याप्त हो गया। उस समय दोनों भाईयों ने अपने आपको कृतकृत्य माना। जहाँ स्वयं तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव आहार लेने वाले हैं और श्रेयांस कुमार जैसे पुण्यशाली देने वाले हैं, देवों के द्वारा पञ्चाश्चर्य वृष्टि की जा रही है, उस समय के आहार दान का महत्त्व कौन कह सकता है? भगवान आहार के अनन्तर वन को विहार कर गये। राजा सोमप्रभ और श्रेयांस भी कुछ दूर तक प्रभु के पीछे-पीछे गये। पुनः नमस्कार करके वापस आ गये।

उस दिन राजा के यहाँ भोजन अक्षय हो गया था। चाहे चक्रवर्ती का कटक भी जीम ले तो भी उसका क्षय नहीं हो सकता था। वह दिन वैशाख सुदी तृतीया का था इसलिये तब से लेकर आज तक भी वह दिन पवित्र ''अक्षय तृतीया'' के नाम से पृथ्वीतल पर सर्वत्र विख्यात है और महान् पर्व के रूप में मनाया जाता है। उस समय राजा श्रेयांस 'दान तीर्थ के प्रवर्तक' कहलाये थे।

देवों ने भी आश्चर्य के साथ श्रेयांस कुमार की बड़ी भारी पूजा की थी तथा भरत चक्रवर्ती ने आकर हर्ष से गद्गद हो पूछा था कि हे कुरूवंश शिखामणे! तुमने यह आहारदान की विधि कैसे जानी? तब राजा श्रेयांस ने अपने जातिस्मरण की बात कहना शुरू की।

हे भरत सम्राट्! इस भव से आठवें भव पूर्व की बात है। जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह के पुष्कलावती देश में एक उत्पलखेट नाम का नगर है। उसके राजा वज्रजंघ अपनी श्रीमती रानी के साथ ससुराल जाते समय मार्ग में वन में पड़ाव डालकर ठहर गये। उस समय अकस्मात् चारणऋद्धि के धारक दो मुनिराज वहाँ आहार हेतु आ गये। उनका वन में ही आहार ग्रहण करने का वृत्तिपरिसंख्यान व्रत था। राजा ने उन्हें देखते ही अत्यर्थ आदर के साथ रानी श्रीमती सहित खड़े होकर उनका पड़गाहन किया पुनः उन्हें ऊँचे आसन पर बिठाया। उनके चरण-कमलों का प्रक्षालन किया, पूजा की, नमस्कार किया और मन, वचन, काय

तथा आहार को शुद्ध निवेदन करके श्रद्धा आदि गुणों से समन्वित राजा ने रानी सहित उन दोनों मुनियों को विधिपूर्वक आहार दिया। उस समय देवों ने विभोर होकर रत्नों को बरसाया और पुष्पों की वर्षा करने लगे, सुगन्धित मन्द पवन चलाई, दुन्दुभि बाजे बजाये और "अहो दान, अहो दान" ऐसी प्रशंसात्मक ध्वनि करने लगे। अनन्तर आहार के पश्चात् राजा ने पुनः उनकी पूजा और वन्दना की।

अनन्तर कंचुकी के द्वारा राजा को पता चला कि ये दोनों महामुनि आपके ही अन्तिम युगलिया पुत्र हैं। इनके दमधर और सागरसेन ये नाम हैं। मतलब रानी श्रीमती के अठानवें पुत्र हुए थे। उन सभी ने अपने बाबा के साथ जैनेश्वरी दीक्षा ले ली थी। उन्हीं में से ये अन्तिम हैं। इतना सुनते ही राजा को अतिशय प्रेम उमड़ पड़ा। भक्ति में विभोर हो राजा ने उनके चरण सानिध्य में बैठकर अपने व श्रीमती के पूर्वभव पूछे। पुनः पूछने लगे कि हे भगवन्! ये हमारे मन्त्री, सेनापति, पुरोहित और सेठजी अतिशय भक्ति से आपका आहार देख रहे थे, इन पर मुझे अत्यधिक स्नेह है एवं ये जो सिंह, सूकर, नकुल और बन्दर बड़ी ही उत्कण्ठा से शान्तचित्त होकर आपका आहार देख रहे थे, ये भी कोई भव्य जीव हैं। कृपया इन सबके पूर्वभवों को भी बतलाकर सभी को कृतार्थ कीजिये तथा गुरूदेव ने क्रम-क्रम से सभी के भव-भवान्तर सुना दिये। अनन्तर राजा ने पुनः निवेदन किया कि आगे हम लोगों के अभी तक इस संसार में कितने भव और शेष हैं? मुनिराज ने कहा–राजन्! आप सभी निकट भव हैं। आप तो इससे आठवें भव में युग के आदि विधाता तीर्थंकर ऋषभदेव होवेंगे, धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति चलायेंगे तथा माता श्रीमती का जीव राजा श्रेयांस होकर दान तीर्थ का प्रवर्तक होगा। आपके ये मतिवर मन्त्री उस भव में आपके प्रथम पुत्र सम्राट् भरत चक्रवर्ती होवेंगे जिनके नाम से यह देश भारत इस सार्थक नाम से सनाथ होगा। ये आनन्द पुरोहित बाहुबली नाम के कामदेव पदवीधारी महापराक्रमी पुत्र होवेंगे। सेनापति का जीव ऋषभसेन होगा जो आपका प्रथम गणधर होगा। ये धनमित्र सेठ अनन्तविजय नामक पुत्र होंगे तथा ये सिंह, सुअर, बन्दर और नकुल के जीव भी अभी दान की अनुमोदना के प्रभाव से अतिशय पुण्य संचित कर चुके हैं। ये मरकर उत्तम भोगभूमि में मनुष्य होकर पुनः कालान्तर में आपकी ऋषभदेव पर्याय में आपके ही

अनन्तवीर्य, अच्युत, वीर और सुवीर नाम के पुत्र होंगे अर्थात् ये आठों जीव आपके ही साथ उत्तम देव व मनुष्य के सुखों को भोगकर पुनः तीर्थंकर पर्याय में आपके ही पुत्र होकर उसी भव से मोक्ष को प्राप्त करेंगे।

इस प्रकार से राजा श्रेयांस के मुख से सर्व अतीत वृत्तांत सुनकर भरत चक्रवर्ती अत्यर्थ प्रमोद को प्राप्त हुये और बहुत से रत्नों, आभूषणों द्वारा उनका आदर सम्मान करके तथा उन्हें "दानतीर्थ प्रवर्तक" उपाधि से विभूषित करके वे अपनी अयोध्या में वापस आ गये।

प्रिय बहनों! एक बार के आहारदान के प्रभाव से उन युगल दम्पत्ति राजा वज्रजंघ और रानी श्रीमती ने कितना उत्कृष्ट फल प्राप्त किया तथा उस दान को देखकर मात्र अनुमोदना करने वाले उन मन्त्री, सेनापति, पुरोहित तथा सेठ ने तथा चारों पशुओं ने उन्हीं के सदृश कैसा महान् अचिन्त्य फल प्राप्त कर लिया। अहो! दान की महिमा अचिन्त्य ही है। आज के युग में भी जो अपने को महामुनि, आर्यिका, क्षुल्लक, क्षुल्लिका आदि साधुवर्ग दिखते हैं उनके प्रति असीम भक्ति रखकर पूजादान भक्ति रखकर पूजादान आदि करके अपने मनुष्य जीवन को सफल कर लेना चाहिये। कहा भी है–

भुक्तिमात्रप्रदाने तु का परीक्षा तपस्विनां।
ते सन्तः सन्त्वसन्तो वा गृही दानेन शुद्धयति।।

अर्थ–भोजन मात्र प्रदान करने के लिए तपस्वियों की क्या परीक्षा करना? वे सद्गुणों से युक्त हों या न हों किन्तु गृहस्थ तो दान से शुद्ध हो ही जायेगा।

गुरुओं की भक्ति दानादि का क्या फल है सो देखिये–

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा।
भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु[2]।।

अर्थ–साधुओं को नमस्कार करने से उच्च गोत्र प्राप्त होता है। उनको दान देने से भोग मिलते हैं। उनकी उपासना से पूजा प्राप्त होती है। उनकी भक्ति से सुन्दर रूप और उनकी स्तुति करने से कीर्ति होती है।

1. श्री सोमदेव सूरि। 2. श्री समन्तभद्र स्वामी।

क्या मुनि रात्रि में बोल सकते हैं?

सुधा–माँ! मुझे आज एक बहन ने बताया है कि मुनिराज कारण पड़ने पर रात्रि में भी शिक्षा और उपदेश देते थे।

माता–हाँ बेटी, मैं तुझे इस पर एक ऐतिहासिक कथा सुनाती हूँ। सुनो!

कौंचपुर के राजा यक्ष सुखपूर्वक राज्य संचालन कर रहे थे। उनके राजिला नाम की रानी थी। उन दोनों के यक्षदत्त नाम का एक पुत्र था। एक दिन बाहर भ्रमण करते हुये यक्षदत्त ने दरिद्रों की बस्ती में एक सुन्दर स्त्री को देखा। देखते ही वह काम-बाणों से आहत हो गया और रात्रि में उसी के उद्देश्य से वहाँ जा रहा था कि मार्ग में एक तरफ विराजमान, अवधिज्ञानी मुनिराज ने ''मा'' अर्थात् मत जाओ इस प्रकार शब्द का उच्चारण किया। उसी समय बिजली चमकी और उसी समय हाथ में तलवार धारण करने वाले यक्षदत्त ने एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए ''अयन'' नाम मुनिराज को देखा। उसने बड़ी विनय से उनके पास जाकर तथा नमस्कार कर उनसे पूछा कि हे भगवन्! आपने ''मा'' शब्द का उच्चारण कर निषेध किसलिए किया?

मुनिराज ने कहा कि आप कामी होकर उसके उद्देश्य से जा रहे हैं वह आपकी माता है इसलिये ''मत जाओ'' कहकर मैंने रोका है। यक्षदत्त ने फिर पूछा-''वह मेरी माता कैसे है? इसके उत्तर में अनुकम्पा से युक्त मुनिराज ने उसे कथा सुनाई जो इस प्रकार है–

मृतिकावती नगरी में बन्धुदत्त वणिक रहता था। उसकी मित्रवती नाम की भार्या थी। एक बार बन्धुदत्त अज्ञातरूप से मित्रवती को गर्भधारण कराकर जहाज से अन्यत्र चला गया। तदनन्तर सास-श्वसुर ने गर्भ ज्ञात होने पर दुश्चरित्रा समझकर उसे नगर से निकाल दिया। उस समय गर्भवती मित्रवती उत्पलिका नाम की दासी को साथ लेकर पिता के घर जाने लगी। मार्ग में जंगल में साँप ने उत्पलिका को डस लिया, जिससे वह मर गई। तब वह स्त्री सखी से रहित, एक शीलरूपी सहायिका ये युक्त हो महाशोक से व्याकुल इस क्रौंचपुर नगरी में आई। यहाँ के उपवन में उसने पुत्र को जन्म दिया। अनन्तर वह पुत्र को रत्नकम्बल में लपेटकर एक समीपवर्ती सरोवर में वस्त्र धोने के लिये गई, तब एक कुत्ता उसके पुत्र को उठाकर ले गया।

वह कुत्ता वहाँ के राजा का पालतू प्यारा कुत्ता था। इसलिये उसने

रत्नकम्बल में लिपटे हुए उस पुत्र को अच्छी तरह से ले जाकर राजा यक्ष को दे दिया। राजा ने भी वह पुत्र अपनी पुत्रहीन राजिला रानी को दे दिया और उसका यक्षदत्त नाम रख दिया। जब मित्रवती लौटकर वहाँ आई और अपना पुत्र नहीं देखा, तब वह दुःख से चिरकाल तक विलाप करती रही। तदनन्तर उपवन के स्वामी देवार्चक ने उसे देखकर दयापूर्वक सांत्वना दी और यह कहकर कि तू हमारी बहन है, अपनी कुटी में रखी। कोई सहायक न होने से लज्जा से अथवा अपकीर्ति के भय से वह फिर पिता के घर नहीं गई और वहीं रहने लगी। वह अत्यन्त शीलवती तथा जिनधर्म को धारण करने में तत्पर रहती हुई दरिद्र देवार्चक की कुटी में बैठी थी, तब घूमते हुए तुमने उसे देखा था। उसके पति बन्धुदत्त ने परदेश जाते समय उसे जो रत्नकम्बल दिया था वह आज भी राजा यक्ष के घर में सुरक्षित रखा है।

इस घटना को सुनकर उस यक्षदत्त ने उन परमोपकारी महामुनिराज को बार-बार नमस्कार किया और बहुत प्रकार से स्तुति की और वह वैसे ही तलवार लिए सीधा राजा यक्ष के पास आया और बोला कि आप मेरे जन्म की सच्ची-सच्ची घटना बता दीजिये। राजा यक्ष ने भी उसी समय उसे बतलाया कि मुझे मेरे पालतू कुत्ते ने रत्नकम्बल में लिपटे हुए तुझे लाकर दिया था, सो मैं और कुछ नहीं जानता हूँ। इतना कहकर उस राजा ने वह रत्नकम्बल, जो कि जरायु से लिप्त था, निकालकर उसको दे दिया।

इस घटना के स्पष्ट होने के अनन्तर यक्षदत्त ने अपने पूर्व की माता और पिता से मिलकर बहुत ही सुख का अनुभव किया और महावैभव से आश्चर्य में डालने वाला बहुत बड़ा उत्सव मनाया गया।

सुधा–सचमुच में मुनिराज एक अकारण बन्धु हैं, जो कि बिना पूछे ही भव्यों का हित करने वाले होते हैं।

माता–हाँ बेटी! इसलिये मुनिराज की वन्दना प्रतिदिन करना चाहिये और आज भी मुनियों का विहार इस भारतवर्ष में सर्वत्र हो रहा है। यदि कदाचित् किसी दिन उनका दर्शन ना मिले, तो परोक्ष में बड़ी विनय से उनकी वन्दना करके जब तक धर्म जीवित है, तब तक मुनियों की परम्परा और श्रावकों की परम्परा जीवित है अथवा यों समझ लीजिये कि जब मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका ये चतुर्विध संघ है, तभी तक जैनधर्म है, क्योंकि जैनधर्म इन्हीं के आश्रित रहता है।

तिरस्कार से सत्कार

सुधा–बहन शशिप्रभा! जब श्री रामचन्द्र सीता और लक्ष्मण के साथ वनवास में घूम रहे थे, क्या देवतागण भी उनकी सेवा करते थे?

शशिप्रभा–हाँ बहन, इसका मैं एक उदाहरण तुम्हारे सामने प्रस्तुत करती हूँ। सुनो! किसी समय निर्जन वन में चलते हुए जब सीता अत्यन्त थक गईं तब श्रीराम से बोलीं–हे नाथ! मेरा कण्ठ बिल्कुल सूख गया है। जिस प्रकार से सैकड़ों जन्म को धारण करने से खिन्न हुआ कोई भव्य अर्हंत भगवान के दर्शन चाहता है उसी प्रकार तीव्र प्यास से व्याकुल मैं अब जल चाहती हूँ। इतना कहकर रामचन्द्र द्वारा रोकने पर भी वह वृक्ष के नीचे बैठ गईं। तब रामचन्द्र ने कहा–हे शुभे! विषाद मत करो। देखो, यह सुन्दर ग्राम दिखाई दे रहा है। वहाँ चलें, वहीं जल पीना। ऐसा कहकर सीता को साथ लेकर वे धीरे-धीरे अरुण ग्राम में पहुँच गये।

वहाँ वे तीनों ही कपिल ब्राह्मण के घर पर ठहर गये। वहाँ यज्ञशाला में क्षणभर विश्राम किया। ब्राह्मणी ने सीता को शीतल जल पिलाया। वे सब वहीं बैठे ही थे कि इतने में ही प्रतिदिन होम करने में कुशल वह कपिल ब्राह्मण बेल, पीपल, पलाश आदि लकड़ियों को लेकर जंगल से आ गया। महाक्रोधी वह ब्राह्मण उन लोगों को देखते ही दावानल के समान भभक उठा। उसके वचन कालकूट के सदृश थे। वह हाथ में कमण्डलु लिये था। उसके सिर पर चोटी, मुख पर लम्बी दाढ़ी और कन्धे पर यज्ञोपवीत था। उञ्छवृत्ति से वह अपनी जीविका चलाता था। उसने अपनी भार्या से कहा, "अरे पापिनी! तूने इन लोगों को यहाँ क्यों आने दिया? देख, मैं आज तुझे पशु से भी अधिक दुःसह बन्धन में डालूँगा। देख, ये धूलि से धूसर, निर्लज्ज, ढीठ लोग मेरी यज्ञशाला को दूषित कर रहे हैं।"

इतना सुनते ही सीता ने राम से कहा–हे देव! इस अपशब्दवादी अधम का स्थान छोड़ो। अपना फूलों-फलों से युक्त वनों में ही हिरणों के साथ रहना अच्छा है। इधर ब्राह्मण के हल्ले-गुल्ले को सुनकर ग्रामवासी लोग आ गये और राम-लक्ष्मण के रूप को देखकर इन्हें देवता समझकर ब्राह्मण को समझाने लगे। परन्तु उसने सबको डाँट-फटकार दिया और राम-लक्ष्मण से बोला–

"तुम लोग अपवित्र हो, शीघ्र ही मेरे घर से निकलो।" इतने पर लक्ष्मण को अत्यधिक क्रोध आ गया। उस ब्राह्मण को उल्टा करके जमीन पर पटकना ही चाहता था कि करुणार्द्रचित्त उन राम ने उन्हें रोक दिया और कहा कि यह बेचारा जीवित रहते हुए भी मृतकतुल्य है। इसके मारने से क्या लाभ है? मुनि, ब्राह्मण, गाय, पशु, स्त्री, बालक और वृद्ध ये सदोष हों तो भी शूरवीरों द्वारा मारने के योग्य नहीं हैं। उसे छुड़ाकर रामचन्द्र लक्ष्मण और सीता को आगे करके उसकी कुटिया से बाहर निकल गये और वन में चले गये।

किसी समय ये तीनों वटवृक्ष के नीचे बैठे हुए थे और खूब जोरों की वर्षा हो रही थी। ये लोग भीग रहे थे। उनको देखकर एक यक्ष अपने स्वामी के पास जाकर बोला कि कोई तीन महानुभाव मेरे घर पर आ गये हैं। यक्षराज ने आकर अवधिज्ञान से उन्हें बलभद्र और नारायण जानकर एक क्षण में उनके लिए सुन्दर नगरी की रचना कर दी। अनेक सेवक स्वामी रामचन्द्र की सेवा में संलग्न हो गये। इसका नाम रामपुरी था। इसकी शोभा का वर्णन अयोध्यापुरी के सदृश था।

अनन्तर प्रातःकाल वही कपिल ब्राह्मण हँसिया लेकर लकड़ी काटने जंगल में गया और इतनी विशाल मनोरम, मन्दिरों से सहित नगरी को देखकर अनेकों कल्पनाएँ करता हुआ आश्चर्य में डूब गया और वहाँ की एक स्त्री से पूछने लगा। उसने बताया कि यहाँ के राजा रामचन्द्र हैं, महारानी सीता हैं। जो भव्य हो, अर्हंत देव का परमभक्त हो, अणुव्रती हो, मुनियों को आहार दान देता हो, उस पर ये संतुष्ट होकर खूब द्रव्य देते हैं। बस, ब्राह्मण बेचारा लकड़ी का गट्ठा पटककर शीघ्र ही जिनमन्दिर में मुनिराज के पास आकर अणुव्रती बन गया और श्रावक की सारी बातें सीख लीं। घर जाकर ब्राह्मण को भी सारी बातों से अवगत कराकर वहाँ गुरू के पादमूल में जैनधर्मिणी बना दिया।

पुनः जिनवन्दना के बाद वह श्रीराम के दर्शनों को गया। वहाँ दूर से ही लक्ष्मण को देखकर पहचानकर पूर्व घटना की याद कर काँपने लगा। उसकी बोलती बन्द हो गयी। वह सोचने लगा कि अब मैं क्या करूँ? किस वन में घुस जाऊँ? आज मुझे कहाँ शरण मिलेगी? वह घबराकर जोर से भागा। तब लक्ष्मण ने उसे देखा। हँसकर और बुलाकर सान्त्वना दी। तब वह अंजलि में पुष्प लेकर अनेक स्तोत्रों से श्रीरामचन्द्र की स्तुति करने लगा। हे ब्राह्मण! उस

समय हम लोगों को वैसा तिरस्कार कर अब पूजा क्यों कर रहे हो, सो तो बताओ। उसने कहा हे देव! मैंने नहीं जाना था कि आप प्रच्छन्न महेश्वर हो। हे जगन्नाथ! जगत की यही रीति है कि धनवान की ही सदा पूजा होती है। इत्यादि रूप से अपनी निन्दा करते हुए उसने कहा – हे देव! उस समय जो मैंने आतिथ्यक्रिया नहीं की, उसका मुझे सदा ही संताप रहेगा। अनन्तर वह शोकाक्रान्त हो रोने लगा। तब राम ने उसे बहुत कुछ समझाया। सीता ने उसकी भार्या को समझाया। उसे भोजन-पान आदि से तृप्त कर बहुत-सा धन प्रदान किया। वह ब्राह्मण भी राम से सत्कार पाकर मालामाल हो गया।

तदनन्तर उस ब्राह्मण का मन पश्चाताप से जला करता था। उसने सोचा जब तक मैं जैनेश्वरी दीक्षा न ले लूँ, तब तक मेरे मन को शान्ति नहीं मिलेगी। अतः सभी परिजनों से ममता छोड़कर उस कपिल ब्राह्मण ने मुनिराज के चरणों में पहुँचकर दिगम्बर मुनि की दीक्षा ले ली और निर्ग्रन्थ रूपधारी तप लक्ष्मी से आलिंगित होते हुए पृथ्वी तल पर विहार करने लगे।

सुधा – इस प्रकार ये लोग वनवास में कितने ही अपमान और सम्मानों को झेले होंगे।

शशिप्रभा – ये लोग महामना, गम्भीर, धीर, वीर थे। सागर के समान मर्यादा के रक्षक थे। तभी तो आज ये रामचन्द्र मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाते हैं। देखो! तभी तो इन्होंने ब्राह्मण के तिरस्कार का फल सत्काररूप से चुकाया।

जिनके उर में कल-कल बहती, गंगा की निर्मलधारा।
त्याग और शुभ ज्ञान मणि से, जिनने निज को शृंगारा।।
वचनों के मोती बिखरातीं, युग की पहली बालसती।
मेरा शत वन्दन स्वीकारो, गणिनी माता ज्ञानमती।।

– आर्यिका चंदनामती

बलि प्रथा कब से चली?

माता – बेटी सुधा, देवियों के सामने बलि देने की प्रथा कब से चली? सो मैं तुझे सुनाती हूँ।

सुधा – हाँ माँ, सुनाओ मैं भी ध्यान से सुनूँगी।

माता – किसी समय आर्यिकाओं का संघ भगवान की जन्म, दीक्षा और निर्वाण कल्याणक भूमियों में विहार कर रहा था। उसमें से एक आर्यिका अपनी सहधर्मियों के साथ विन्ध्याचल के विशाल वन में जा पहुँची। रात्रि के समय एक आर्यिका निर्विकल्पचित्त हो प्रतिमायोग से ध्यान में लीन हो गई। उसी समय किसी बहुत बड़े धनी संघ पर आक्रमण करने के लिए रात्रि के समान काले भीलों की बहुत बड़ी सेना वहाँ आयी। उस आर्यिका को देखकर यहाँ कोई वन देवी विराजमान हैं। ऐसा समझकर सैकड़ों भीलों ने उसे नमस्कार कर यह वरदान माँगा कि हे देवी! आपके प्रसाद से यदि निरुपद्रव रहकर हम लोगों को बहुत सा धन मिलेगा तो हम आपके पहले दास होंगे।

इस प्रकार मनोरथ बाँधकर वे भील लोग चले गये और बहुत बड़े एक यात्रियों के संघ पर धावा बोल दिया। उन्हें मार-पीटकर, लूटकर वे बहुत-सा धन संग्रह करके कृतार्थ होते हुए वहाँ आये।

इधर यह घटना घटी थी कि जब भील लोग आर्यिका के दर्शन कर चले गये तब वहाँ एक सिंह आया और ध्यान में स्थित उस आर्यिका पर घोर उपसर्ग शुरू कर दिया। उपसर्ग देख आर्यिका ने बड़ी शान्ति से समाधि धारण कर ली और शरीर से निर्मम होकर मरणपर्यन्त के लिये चतुराहार का त्याग कर दिया। तदनन्तर प्रतिमायोग से ही मरण कर वे स्वर्ग चली गईं। निरन्तर धर्म का उपार्जन करने वाली एवं समाधि में स्थिर रहने वाली उस आर्यिका का शरीर सिंह ने अपने नख-मुख और दाँतों से विदीर्ण कर डाला था। तथापि उसके हाथ की वहाँ तीन अँगुलियाँ शेष बच रही थीं।

भीलों ने वहाँ आकर उस देवी के स्थान पर चारों तरफ उसे ढूँढना शुरू किया। तब वहाँ खून से लिप्त भूमि को देखा। उन्हें वह देवी (आर्यिका) नहीं दिखी तथा वे शेष बची तीन अंगुलियाँ दिखाई दीं। तब अन्त में उन भीलों ने यह निर्णय किया कि हमें वरदान देने वाली वह देवी रुधिर से ही संतुष्ट होती

है। इसलिये उन क्रूर भीलों ने शेष तीन अंगुलियों को वहीं देवतारूप में विराजमान कर दिया और बड़े-बड़े जंगली भैंसों को मारकर खून एवं माँस की बलि चढ़ाना शुरू कर दिया। इस बलिदान से वहाँ मक्खियाँ और मच्छर भिनभिनाने लगे। वह स्थान आँखों के लिए भयंकर हो गया तथा अत्यन्त दुर्गन्धि चारों तरफ फैल गई। यद्यपि वह आर्यिका परम दयालु थी, उपचार से महाव्रतों का पालन करने वाली निष्पाप थी और तप के प्रभाव से उत्तम गति को प्राप्त हुई थी। फिर भी पापी धूर्त उसको निमित्त बनाकर भैंसा आदि निरपराध पशुओं की बलि चढ़ाने लगे और आज तक भी उन भीलों द्वारा प्रदर्शित बलि प्रथा चली आ रही है।

सुधा–हे माँ! आज लोग तो पुत्र या धन आदि की प्राप्ति के लिये या मनोरथ सिद्धि के लिये बलि करते हैं।

माता–बेटा, यह कल्पना वैसे ही पापपूर्ण है कि जैसे कोई जीवित रहने की इच्छा से हालाहल विष पी ले या तलवार से अपनी गर्दन काट ले। क्या कहीं जीव हिंसा से भी आज तक कोई सुखी या सम्पन्न हुए हैं?

सुधा–माँ, जब अपने सच्चे मुनि या आर्यिका आदि के निमित्त से लोग पापकर्म उपार्जित कर लेते हैं तो क्या उन मुनि आदि को भी दोष लगता है?

माता–नहीं बेटा, उन्हें क्यों दोष लगेगा? देखो! भगवान आदिनाथ के समय चार हजार राजा दीक्षित होकर भ्रष्ट हुए थे। राजा श्रेणिक ने मुनिराज के गले में मरा सर्प डालकर नरक आयु बाँध ली थी। इन सभी बातों से तुम यही समझो कि जो जैसा करता है, उसको वैसा ही फल मिलता है।

किसी भी कार्य के प्रारंभ में इष्टदेव का नाम स्मरण करें

आरंभे तु पुराणस्यान्यव्यापाराय कस्यचित्।
''नमः सिद्धेभ्यः'' इत्युच्चैर्नम्रीभूतो वदेद्वचः।।

अर्थ–किसी शास्त्र के प्रारंभ में तथा अन्य किसी भी कार्य के प्रारंभ में नम्रता के साथ ''ॐ नमः सिद्धेभ्यः'' इस पद का उच्चारण करना चाहिए।

अहिल्या की कथा

कमला–बहन जी! सुनने में आता है कि इन्द्र ने ऋषि पत्नी अहिल्या का उपभोग करना चाहा था तथा पत्थर सदृश हो गई अहिल्या का रामचन्द्र ने उद्धार किया था सो क्या वास्तविक बात है?

अध्यापिका–जैन सिद्धान्त के अनुसार मैं तुम्हें अहिल्या की कथा सुनाती हूँ, सुनो।

अरिंजयपुर नगर में वह्निवेग नामक विद्याधर राजा की वेगवती रानी से अहिल्या नाम की पुत्री का जन्म हुआ था। उस अहिल्या की युवावस्था में राजा वह्निवेग ने स्वयंवर की रचना की थी। अहिल्या के उस स्वयंवर में विजयार्ध पर्वत की श्रेणी पर रहने वाला बहुत ही पुण्यशाली इन्द्र के समान वैभव का उपभोग करने वाला 'इन्द्र' नाम का एक विद्याधर राजा भी आया था। समस्त विद्याधरों को छोड़कर कन्या ने चन्द्रावर्त के राजा आनन्दमाल के गले में वरमाला डाल दी। तभी से विद्याधरों का राजा इन्द्र उससे द्वेष करने लगा। यह इन्द्र मनुष्य था। नाम से और पुण्योदय के विशेष वैभव से इन्द्र कहलाता था।

किसी समय राजा आनन्दमाल ने विरक्त हो जैनेश्वरी दीक्षा ले ली और वे रथावर्त पर्वत पर प्रतिमायोग से विराजमान थे। अकस्मात् विद्याधर इन्द्र उधर से निकला। उन्हें पहचानकर द्वेष के कारण क्रीड़ा करते हुए उसने बार-बार उनकी हँसी की और बोला–''अरे! काम भोगों में आसक्त तू अहिल्या का पति है। इस समय यहाँ क्यों बैठा है?'' ऐसा कहकर उसने उन्हें रस्सियों से कसकर लपेट दिया। फिर भी उनका शरीर पर्वत के सदृश निष्कम्प रहा और वे मुनिराज तत्त्वचिन्तन में निमग्न रहे। वे मुनि तो निर्विकार रहे किन्तु पास में उनके भाई विराजमान थे जो कि ऋद्धिधारी मुनि थे। उन्होंने भाई का अनादर देखकर अपना योग संकुचित करके गरम श्वास भरकर कहा कि अरे! तूने इन निरपराध मुनिराज का तिरस्कार किया है तो तू भी बहुत बड़े तिरस्कार को प्राप्त होगा। वे मुनिराज अपरिमित श्वास से उस इन्द्र को भस्म ही कर देते किन्तु इन्द्र की पत्नी सर्वश्री ने बीच में ही क्षमायाचना, स्तुति आदि से उन्हें शान्त कर दिया। उन मुनिराज के शाप के निमित्त से अथवा आनन्दमाल मुनिराज के उपसर्ग के निमित्त से उस समय जो पाप का बन्ध हो गया था, सो

उसी जन्म में रावण ने उस इन्द्र को युद्ध में बाँध लिया था। अत्यधिक तिरस्कार को प्राप्त हुए इन्द्र ने उस अपमान से खिन्न होकर और भोगों से विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा ले ली थी तथा घोर तपश्चरण करके वे मोक्ष को प्राप्त हो चुकेथे।

कमला–बहन जी! जो यह चर्चा सुनने में आती है कि रावण असुर था, दानव था, उसने स्वर्ग के इन्द्र को भी युद्ध में जीत लिया था अर्थात् देव और दानवों में युद्ध हुआ था। सो क्या यह बात सही है?

अध्यापिका–बेटी! नहीं, यह ऐसी बात नहीं है। वास्तव में रावण विद्याधर राजा था और यह इन्द्र भी विद्याधर राजा था। ये दोनों ही मनुष्य थे न दानव थे और न देव थे। रावण राक्षसवंशी था और इन्द्र ने इन्द्र के समान अपने राज्य में व्यवस्था बना ली थी। कालांतर में रावण ने इन्द्र विद्याधर को जीता था। यही बात वास्तविक है और सब कपोल कल्पना है। अहिल्या के विषय में भी लौकिक कथाएँ महत्त्व नहीं रखती हैं। वास्तव में तुम्हें रामचरित्र–पद्मपुराण अवश्य पढ़ना चाहिये।

कमला–अच्छा बहन जी! अब मैं इन पुराणों का स्वाध्याय अवश्य करूँगी।

वास्तव में 'जैन' नाम से खोली गई शिक्षण संस्थाओं में यह हिंसामय बायलोजी शिक्षण नहीं होना चाहिए। अरे! आटे का मुर्गा बनाकर बलि करने वाले यशोधर राजा ने दस भवों तक जो दुःख भोगे हैं, वह कथा पढ़कर हर किसी को सोचना चाहिए कि भले ही इन मेंढकों के मारने में डाक्टरी सीखकर, आगे हजारों रोगियों का आपरेशन कर उन्हें जीवनदान देंगे किन्तु हजारों जीवनदान के पुण्य से एक जीव का बुद्धिपूर्वक घात करना, उस पुण्य से अधिक गुणा बड़ा महापाप है।''

(मेरी स्मृतियाँ, पेज-२३२)

न्यायशास्त्र कसौटी के पत्थर हैं

मंजुला–त्रिशला! आर्यिका श्रीज्ञानमती माताजी ने एक बार उपदेश में कहा था कि न्यायशास्त्र कसौटी के पत्थर हैं। सो मेरी समझ में नहीं आया अतः तुम्हीं बताओ क्योंकि तुम भी तो आजकल न्यायसार का स्वाध्याय कर रही थीं।

त्रिशला–हाँ सुनो! मंजुला, मैं तुमको बताती हूँ। जैसे भैय्या दुकान पर कसौटी के पत्थर पर सोने को घिसकर असली-नकली की परीक्षा किया करते हैं वैसे ही न्याय कसौटी का पत्थर है। इस पर प्रमाण, नय, वस्तु, तत्त्व आदि को कसकर समझा जाता है। अरे और तो क्या, देखो! श्री समन्तभद्र स्वामी ने तो साक्षात् आप्त–सर्वज्ञ भगवान की ही परीक्षा कर डाली थी और सच्चे आप्त की परीक्षा करके उन्हें नमस्कार किया जिसका 'अष्टसहस्री ग्रन्थराज' में सुन्दर विवेचन है।

मंजुला–मैं इतने ऊँचे ग्रन्थ को तो समझ नहीं सकती अतः हमारे पढ़ने योग्य छोटे-छोटे ग्रन्थों के नाम बताओ। पहले मैंने 'न्यायदीपिका' और 'परीक्षामुख' पढ़ा था, मुझे तो कुछ समझ में आया नहीं। अब ऐसा कुछ उपाय बताओ जिससे मुझे भी इन विषयों में रुचि जागृत हो।

त्रिशला–हाँ सुनो, सबसे पहले तुम अब 'देवागम स्तोत्र' पढ़ो और साथ ही 'न्यायसार' हिन्दी का स्वाध्याय भी कर लो, तुम्हारी रुचि बढ़ जायेगी।

मंजुला–त्रिशला, हमें कुछ अपने अनुभव की खास-खास बातें समझा दो तो और रुचि बढ़ जायेगी।

त्रिशला–सुनो! तुम्हें मजेदार बात सुनाएँ। बौद्ध असत्कार्यवादी है। वह कहता है कि कारण का जड़मूल से विनाश होकर ही कार्य बनता है जैसे घड़ा बनाने के लिये कुम्हार ने मिट्टी को चाक पर चढ़ाया और जब घड़ा बनने वाला था तब मृत्पिड का जड़मूल से समूल-चूल नाश हो गया और घड़ा बन गया। ऐसे ही बीज का जड़मूल से नाश होकर अंकुर होता है। सूत के धागों का जड़मूल से नाश होकर वस्त्र बनता है। चावल का जड़मूल से सर्वनाश होकर भात बनता है और यहाँ तक कि तुम रोटी बनाती हो तो उसमें आटे का पूर्णतया सत्यानाश होकर रोटी बनती है। कहो, क्या तुम्हें यह बात जँचती है?

मंजुला–नहीं, बिल्कुल नहीं जँचती है। मैं तो यह समझ रही हूँ कि यह मिट्टी की घटरूप परिणति हुई। ऐसे ही धागे ही मिलकर वस्त्र बने हैं, बीज का

ही अंकुर हुआ है तथा चावल ही पककर भात बना है और आटे की ही रोटी तैयार हुई है।

त्रिशला–इसलिये आचार्यों ने उस सिद्धान्त का खण्डन किया है।

मंजुला–क्या किसी के मत का खण्डन करना आचार्यों का कर्त्तव्य है। अरे! किसी से द्वेष क्यों करना? वे बेचारे अपनी दृष्टि से मान रहे हैं, ठीक है।

त्रिशला–मंजुला, ऐसी बात नहीं है। आचार्यों के प्रति अपने को ऐसा सोचना ही नहीं चाहिये। यह तो छोटे मुँह बड़ी बात वाली कहावत है, क्योंकि आचार्य महान पापभीरू, सर्वप्राणियों के सच्चे हितैषी और भावलिंगी,महाव्रती, सच्चे साधु थे। दूसरी बात यह है कि मिथ्या धारणा का खण्डन करना धर्म ही नहीं परम धर्म है अन्यथा लोग भटकते ही रहेंगे। क्या यदि कोई क्रोधादि कषाय से कुँए में गिरने वाला हो तो तुम उसे नहीं रोकोगी?

मंजुला–अवश्य रोकूँगी। यहाँ तक कि उसका हाथ पकड़कर समझाऊँगी।

त्रिशला–वैसे ही अज्ञानी प्राणी मिथ्यात्व कर्म के उदय से और मान कषाय से विपरीत धारणा से संसाररूपी समुद्र में डूब रहे हैं। आचार्यों ने करुणा बुद्धि से उन्हें गलत मान्यता को छोड़ने का उपदेश देकर अनेकों युक्तियों से उन्हें समझाया है। इन युक्तियों का नाम ही न्यायशास्त्र अथवा तर्कशैली है।

मंजुला–अच्छा! तो फिर बौद्धों की मान्यता के बाद औरों ने इस कारण-कार्य की व्यवस्था को कैसे माना है?

त्रिशला–सांख्य सत्कार्यवादी है। वह कहता है कि कारण में कार्य हमेशा ही विद्यमान रहता है। कुम्हार ने चाक पर मिट्टी को चढ़ाया तो क्या किया? वास्तव में उसने घड़े को प्रकट कर दिया। कुम्हार ने घड़े को बनाया नहीं है क्योंकि मिट्टी में घड़ा सदैव विद्यमान ही रहता है। ऐसे ही बीज में अंकुर हमेशा मौजूद रहता है किसान केवल प्रगट कर देता है। चावल में भात पहले से ही मौजूद था तुमने क्या किया? चूल्हे पर चढ़ाकर प्रगट कर दिया।

मंजुला–यह तो बहुत ही विचित्र बात है। यदि पहले ही मिट्टी में घड़ा मौजूद रहता है तो कभी दिखना भी चाहिये। बड़े विचित्र सिद्धान्त हैं। अच्छा अब यह बताओ कि जैनाचार्य क्या कहते हैं?

त्रिशला–हाँ सुनो! जैनाचार्यों ने इनका भी खण्डन बलपूर्वक अकाट्य

1. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान से प्रकाशित है।

युक्तियों से किया है। अनन्तर समझाया है कि कारण में कार्य शक्तिरूप में विद्यमान है जैसे कि दूध में घी, संसारी आत्मा में परमात्मा आदि।

पुनः निमित्त मिलने से उपादान कारण कार्यरूप परिणत हो जाता है जैसे मिट्टी ही घटरूप परिणत हुए, चावल ही भातरूप परिणत हुए हैं इसलिये कारण का समूलचूल नाश होकर भी कार्य नहीं बनता है और कारण में कार्य सर्वथा विद्यमान भी नहीं रहता है।

मिट्टी के पिंडरूप पर्याय का नाश हुआ किन्तु मिट्टीरूप द्रव्य का नाश नहीं हुआ है ऐसे ही मृत्पिंडरूप कारण में घट मिट्टी के द्रव्यरूप में विद्यमान है। घट पर्याय रूप से नहीं है। वास्तव में एक पर्याय का नाश होकर दूसरी पर्याय का उत्पाद होता है और मिट्टीरूप द्रव्य दोनों अवस्थाओं में ध्रौव्य रूप से विद्यमान रहता है।

मंजुला–यह उपादान कारण क्या है?

त्रिशला–कारण के दो मुख्य भेद हैं–एक उपादान कारण, दूसरा निमित्त कारण। जैसे कि घट को बनाने में मिट्टी तो उपादान कारण है तथा कुम्भकार, चाक आदि निमित्त कारण हैं। इन दोनों के बिना भी कार्य नहीं हो सकता है इसलिये उपादान कारण अर्थात् मिट्टी ही कुम्हार के निमित्त से घटरूप बना है। वास्तव में उस मिट्टीरूप कारण में घटरूप बनने की शक्ति मौजूद थी अन्यथा वह घड़ा नहीं बन सकता था।

यहाँ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को समझो। मिट्टीरूप पूर्व पर्याय का विनाश और घटरूप उत्तर पर्याय का उत्पाद तथा दोनों अवस्थाओं में मिट्टी की स्थिति रहना। इसी का नाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है। जैसे–जीव की मनुष्य पर्याय का उत्पाद, देव पर्याय का विनाश और दोनों अवस्थाओं में जीवत्व का ध्रौव्य रहना।

इसलिये कथंचित् पर्याय का विनाश अवश्य हुआ है किन्तु मिट्टी द्रव्य का विनाश नहीं हुआ है। ऐसे कथंचित् कारण में कार्य अवश्य है किन्तु वह शक्तिरूप से है, व्यक्त नहीं है। कुम्हार आदि निमित्त कारण घड़े को बनाते हैं न कि प्रगट करते हैं।

मंजुला–आज हमें खूब अच्छा समझ में आया है। ऐसे ही तुम मुझे कभी-कभी कुछ-कुछ खास बातें बतला दिया करो तो बहुत ही अच्छा होगा।

त्रिशला–ठीक है, तुम स्वयं भी पढ़ो। जब शंका हो, समझने की कोशिश करो और हम लोगों से प्रश्न करो तो और भी अच्छा रहेगा।

क्या रावण कभी शीलवान था?

सुधा–बहन जी! क्या रावण सदा ही परस्त्री लोलुपी रहा था या कभी उसने जीवन में सदाचार का भी अवलम्बन लिया था?

अध्यापिका–नहीं, नहीं। वह केवल सीता का अपहरण करके ही अपकीर्ति का भाजन बना है। उसके पूर्व की उसके जीवन की झाँकी देखिये।

इन्द्र नाम के विद्याधर राजा ने दुर्लंध्यपुर नगर में नलकूबर विद्याधर को लोकपाल बनाकर स्थापित कर दिया। यह उस समय की बात है जब रावण, चक्ररत्न को प्राप्त कर तीन खण्ड को जीतने के लिए निकला था। वह दुर्लंध्यपुर के निकट पहुँच गया। अपने स्वामी की आज्ञानुसार समयानुसार कार्य करने में कुशल नलकूबर ने आप्त जनों के साथ विचार कर नगर की रक्षा में बुद्धि लगाई। उसने सौ योजन ऊँचा और तिगुनी परिधि से युक्त वज्रशाल नाम का कोट, विद्या के प्रभाव से नगर के चारों ओर खड़ा कर दिया।

इधर रावण ने दण्ड वसूल करने के लिए प्रहस्त सेनापति को उस नगर में भेजा। उसने वापस आकर कहा कि हे देव! इस नगर का प्राकार ऊँची शिखरों से युक्त है, अजगर के समान भयंकर है और ऐसा लगता है मानों अग्नि के कणों को बरसा रहा है। इसमें वेतालों के समान भयंकर बड़े-बड़े यन्त्र लगे हैं जो कि एक योजन तक के मनुष्यों को अपनी ओर खींचकर खत्म कर देते हैं। ऐसा जानकर आप इस नगर को प्राप्त करने के लिए कोई कुशल उपाय सोचिये। उस समय कैलाश पर्वत की गुफाओं में बैठे हुए मन्त्रीगण उपाय सोचने लगे। इसी बीच में एक विशेष घटना घटित हुई।

उधर नलकूबर की उपरम्भा स्त्री ने जब रावण के निकट आने का समाचार सुना तब वह अपनी विचित्रमाला सखी से बोली कि–हे सखी! तुझे छोड़कर प्राणतुल्य मेरी अन्य सखी कौन है? देखो! मैं तुझे अपने मन की बात कहती हूँ। सुन, और मेरे कार्य को सिद्ध कर। बाल्यावस्था से ही मेरा मन रावण में लगा था। मैंने बहुत बार उसके रूप और गुणों की प्रशंसा सुन रखी थी। आज अकस्मात् ही अवसर हाथ लगा है। यद्यपि यह कार्य अत्यन्त निन्दनीय है तो भी उस उपरम्भा ने लज्जा को छोड़कर सारी स्थिति अपनी सखी को समझाकर रावण के पास भेज दिया। वहाँ पहुँचकर रावण को प्रणाम

करके उस विचित्रमाला ने रावण से कहा कि आप क्षण भर के लिये मेरी बात का एकांत में श्रवण कीजिये।

रावण ने दूती के मुख से एकान्त में बात सुनी तब अपने दोनों हाथों से दोनों कान ढक लिये। वह बहुत देर तक सिर हिलाता रहा और नेत्र सिकोड़ता रहा। सदाचार में तत्पर रावण ने परस्त्री की वार्ता सुनकर कहा कि हे भद्रे! पाप के स्थानस्वरूप यह कार्य मुझसे नहीं हो सकता है। चाहे विधवा हो, पतिसहित हो, चाहे महारूपवती हो, परस्त्री मात्र का प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिये। यह कार्य इस लोक और परलोक दोनों ही जगह विरुद्ध है तथा जो दोनों लोकों से भ्रष्ट हो गया है वह मनुष्य ही क्या? दूसरे मनुष्य की लार से पूर्ण तथा अन्य अंग से मर्दित जूठा भोजन खाने की कौन मनुष्य इच्छा करता है?

तदनन्तर रावण ने यह बात एकान्त में विभीषण से भी कही। उस समय विभीषण ने बुद्धिमत्ता से राय दी। उसने कहा कि नीतिमान् राजा को कभी युक्ति से कार्य सिद्ध करने में झूठ भी बोलना पड़ता है। सम्भव है कि आप उस उपरम्भा की बात स्वीकार कर लेवें तो आपको नगर में बुलाने का कोई उपाय बतला सकती है। तब रावण ने उस दूती को एकान्त में बुलाकर कहा कि जाओ, उसे शीघ्र ही यहाँ ले आओ। प्रसन्न हुई उपरम्भा वहाँ आ गयी। जब काम के वशीभूत उपरम्भा रावण के निकट पहुँची तब रावण ने कहा–हे देवि! मेरी इच्छा आपके दुर्लंध्यनगर में ही रमण करने की है। तुम्हीं कहो, इस जंगल में क्या सुख है? हे देवि! ऐसा करो कि जिससे मैं तुम्हारे साथ नगर में ही रमण करूँ।

स्त्रियाँ स्वभाव से ही कोमल होती हैं अतः उपरम्भा भी रावण की कूटनीति नहीं समझ सकी। उस समय उसने रावण को नगर में आने के लिये "आशालिका" नाम की वह विद्या दे दी जो कि नगर में प्राकार बनकर खड़ी थी तथा व्यन्तर देवों से रक्षित ऐसे बहुत से शस्त्र भी आदर से दे दिये। विद्या मिलते ही वह मायामय परकोटा दूर हो गया। तब रावण ने बड़ी भारी सेना लेकर नलकूबर से युद्ध करके उसे जीवित पकड़ लिया और इन्द्र सम्बन्धी सुदर्शन नामक चक्ररत्न भी ग्रहण कर लिया।

अनन्तर उपरम्भा के निकट आने पर रावण एकान्त में उससे बोला कि हे भद्रे! विद्या के देने से तुम मेरी गुरू हो। पति के जीवित रहते तुम्हें ऐसा कहना योग्य नहीं है और नीतिमार्ग का उपदेश देने वाले मुझे तो बिल्कुल योग्य नहीं

है अतः अपने पति नलकूबर में ही सन्तुष्ट होकर सुख से रहो। ऐसी बात सुनकर लज्जित हुई उपरम्भा अतीव लज्जा को प्राप्त हुई और चुपचाप चली गयी। इधर उसके पति नलकूबर को इस उपरम्भा की कोई भी बात का पता नहीं चल सका अतः वह भी पुनः रावण से सम्मान पाकर पूर्ववत् अपने नगर में रहने लगा।

सुधा–बहन जी! इस कथानक से तो यह पता चलता है कि वह रावण परस्त्री के विषय में बहुत ही पापभीरू था और सदाचारी था।

अध्यापिका–हाँ बेटी! फिर भी कुछ पूर्व जन्म के पाप कर्म का उदय आ जाने से उसने सीता का अपहरण किया था। देखो! फिर भी अपने नियम की सुरक्षा करते हुए उसने सीता से बलात्कार व्यभिचार करने का साहस नहीं किया था। केवल डराकर या समझाकर जैसे-तैसे वह उसे वश में करना चाहता था। अनन्तर सीता से विरक्त होकर उसने यह भी सोचा कि रामचन्द्र को युद्ध में जीतकर मैं उसकी सीता वापस कर दूँगा। इसी बीच में युद्ध में मरकर तथा प्रतिनारायण के नियोगस्वरूप भी वह नरक चला गया है। आगे यह रावण का जीव तीर्थंकर होगा, तब सीता का जीव उन्हीं तीर्थंकर का गणधर होगा, ऐसा भगवान महावीर ने बताया है।

प्रिय सुधा! कर्मों की गति बहुत ही विचित्र है अतः प्रथमानुयोग ग्रन्थों का स्वाध्याय करके मन को और आचरण को पवित्र बनाना चाहिये।

सच तो इस नारी की शक्ति, नर ने पहचान न पाई है।
मन्दिर में मीरा है तो वह, रण में भी लक्ष्मीबाई है।।
है ज्ञान क्षेत्र में ज्ञानमती, नारी की कला निराली है।
सच पूछो नारी के कारण, यह धरती गौरवशाली है।।

बालिकाओं का जीवन

प्रीति, कीर्ति, लता, कुसुमा, सुषमा, सुधा आदि बालिकाएँ आकर आचार्यश्री के, सर्वमुनियों और आर्यिकाओं के दर्शन करके परम विदुषी प्रमुख आर्यिका के पास पहुँचती हैं और उन्हें 'वन्दामि' शब्दोच्चारणपूर्वक नमस्कार करके कुछ प्रश्न करती हैं–

सभी कन्यायें हाथ जोड़कर–"वन्दामि माताजी!"

वरदहस्त उठाकर माताजी आशीर्वाद देती हैं। **"सद्धर्मवृद्धिरस्तु"** पुनः कन्यायें पूछती हैं–"माताजी, आपका रत्नत्रय कुशल है।"

"हाँ कुशल है। कहो, आज तुम सभी बालिकाएँ एक साथ दिख रही हो। क्या कोई खास बात है?"

सभी हँस पड़ती हैं और कहती हैं–"हाँ, माताजी! आज हम सभी बालिकाएँ आपके लेखन कार्य में विघ्न डालने आयी हैं।"

"अच्छा, यदि तुम सब विशेष लाभ लेना चाहोगी, तो मैं लिखना बन्द कर दूँगी। एक घण्टा समय तुम्हें ही दे दूँगी।"

"बहुत अच्छा माताजी, हम लोग कुछ शंकाओं का समाधान चाहती हैं। पुनः आप जो भी नियम कहेंगी, हम लोग यथाशक्य ग्रहण भी करेंगी।"

"माताजी! मेरी भाभी के लड़की हुई है। आज सात दिन हो गये किन्तु घर में इतनी अशान्ति मची हुई है कि मेरा एक मिनट मन नहीं लगता। सभी महिलाएँ भाभी को कोसती हैं। ऐसा लगता है कि उन्होंने कोई घोर अनर्थ कर डाला है। पापा ने कहा कि वह कन्या भी अपना भाग्य अपने साथ लेकर आई है। तुम लोग इतना क्यों शोरगुल मचा रही हो? किन्तु ऐसा लगता है कि मम्मी के सिर पर अभी से एक लाख का कर्जा चढ़ गया हो। मम्मी को ऐसा लग रहा है कि अभी तक मैं अपनी ही लड़कियों को निपटा नहीं पाई और यह एक बला और आ गयी। इन सभी बातों को देखकर मुझे जीवन से एक अरुचि सी हो गई है। ऐसा क्यों हो रहा है?"

"प्रीति, प्रायः जब-तब ऐसी चर्चाएँ मेरे पास आती ही रहती हैं। मुझे भी यह सुनकर बड़ा दुःख होता है। देखो! तुम्हारी मम्मी भी किसी की कन्या ही हैं, हम भी कन्या ही थे। ओह! आज की यह स्थिति दहेज दानव का ही जीता-

जागता नमूना है। घर-घर में कन्याओं के माता-पिता दुःखी हैं और कन्याओं का जीवन भारस्वरूप प्रतीत हो रहा है और न जाने कितनी दुर्घटनायें भी हो रही हैं। यह सब कलिकाल का ही दोष कहना पड़ेगा। यदि हम अपनी अनादि परम्परा को उठाकर देखती हैं तो मालूम पड़ता है कि एक समय कन्याएँ सर्वोत्तम रत्न मानी जाती थीं और जिनके घर कन्या का जन्म होता था वे **रत्नाकर** इस सार्थक नाम को धारण करते थे। बड़े-बड़े चक्रवर्ती आदि भी उनसे कन्या की याचना करते थे। देखो! आदिपुराण में सुलोचना के स्वयंवर का वर्णन करते हुए आचार्य ने सुलोचना के पिता अकंपन महाराज को रत्नाकर कहा है–

रत्नाकरत्वदुर्गर्वमम्बुधिः श्रयते वृथा।
कन्यारत्नमिदं यत्र तयोरेतद् विराजते।।298।।

समुद्र अपने रत्नाकरपने का खोटा अहंकार व्यर्थ ही धारण करता है, क्योंकि जिनके यह कन्यारूपी रत्न है उन्हीं राजा अकम्पन और रानी सुप्रभा के यह रत्नाकरपना (रत्नों की खानस्वरूप समुद्रपना) सुशोभित होता है।

स्वयंवर विधान में तो हजारों क्या, लाखों-करोड़ों राजा-महाराजा एक कन्या के लिये वहाँ एकत्रित हो जाते थे। कन्या तो उनमें से किसी एक का ही वरण करती थी। तब वे अपने आपको भाग्यहीन अनुभव करते थे। सीता आदि के स्वयंवर से भी यही बात स्पष्ट है। भगवान नेमिनाथ के लिये स्वयं श्रीकृष्ण नारायण उग्रसेन के यहाँ राजमती कन्या की याचना के लिये गये थे, इत्यादि अनेक उदाहरण कन्याओं के विषय में भरे पड़े हैं कि उन्हें कितना गौरव प्राप्त था। लड़कों के माता-पिता कन्या के पिता को तंग करके जबरदस्ती दान-दहेज नहीं माँगते थे, बल्कि कन्या के पिता स्वरुचि से ही यथाशक्ति बहुत कुछ दहेज देते ही थे।

हमें तो यही समझ में आता है कि पुरातन युग में कन्या को प्राप्त करने के लिये पुरुष को 'शुल्क' की आवश्यकता रहती थी। तभी तो श्री वादीभसिंह सूरि ने क्षत्रचूड़ामणि में अलंकारिक भाषा में कहा है–

श्रीपतिर्भगवान् पुष्यात् भक्तानां वः समीहितम्।
यद्भक्तिः शुल्कतामेति मुक्तिकन्याकरग्रहे।।

अन्तरंग-बहिरंग लक्ष्मी के अधिपति श्री जिनेन्द्र भगवान आप सभी भक्तों के मनोरथ को सफल करें कि जिनकी भक्ति मुक्तिरूपी कन्या के पाणिग्रहण

में शुल्क का कार्य करती है।

ऐसे युग में कन्याओं के जन्म लेते ही शायद माता-पिता इतने दुःखी नहीं होते होंगे। आज के युग में पुत्र भी तो बड़े होकर नौकरी में या अन्यत्र कहीं व्यापार में लग जाते हैं तो वे माता-पिता को भला क्या सुख देते हैं? अस्तु! अगर भारतवर्ष की या अपने समाज की सभी कन्याएँ मिलकर इस दहेज प्रथा का विरोध स्वीकार कर लें तो यह प्रथा भी जड़मूल से समाप्त हो जाए।

सुधा बोलने लगती है–"माताजी! बहुत सी कन्याएँ तो वकील, डॉक्टर, इन्जीनियर आदि के कोर्स का अध्ययन करके अपने पैरों पर खड़ी होकर अपने माता-पिता को निश्चिन्त भी कर देती हैं फिर भी अपने आप जो वर जँचे, उसके साथ शादी करके अपना जीवन सुखद बना लेती हैं। ऐसे अनेक उदाहरण अपनी नजरों से देख-देखकर कभी-कभी भाव भी ऐसे हो जाते हैं कि हम भी ऐसी ही क्यों न बनें? किन्तु मेरे पिताजी तो मेरी आगे की पढ़ाई कराने के खर्चे को झेलने के लिये ही असमर्थ हैं, क्या करें?"

माताजी कहती हैं–"बेटी सुधा! कन्याओं का ऐसा स्वतन्त्र जीवन भी गलत ही है। माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे कन्याओं को योग्य उचित विद्याध्ययन कराने में संकोच न करें। पूर्व में भगवान ऋषभदेव ने स्वयं ही सर्वप्रथम अपनी ब्राह्मी-सुन्दरी नाम की दोनों कन्याओं को विद्याध्ययन कराया था पुनः उन्होंने अपने भरत आदि एक सौ एक पुत्रों को भी सर्व विद्याओं में निष्णात किया था। आज की शिक्षा कन्याओं को सर्वथा स्वच्छन्द बना देती है, जिससे कि उनका शीलधर्मरूपी महारत्न नष्ट-भ्रष्ट हो जाने की दुःखद घटनाएँ प्रायः सुनने में आती रहती हैं अतः कन्याओं को अपनी मर्यादा में रहकर ही विद्या ग्रहण करना चाहिये।"

सुषमा कहने लगती है–"माताजी! एक दिन मेरी बड़ी बहन आर्थिक स्थिति से परेशान होकर पिता के पास आकर कुछ धन माँग रही थी कि जिससे जीजा जी कुछ अपना व्यापार जमा लें, तो भाई ने झट से कह दिया कि ब्याह के बाद लड़कियों का घर में कुछ भी अधिकार नहीं है अतः हम कुछ नहीं देने देंगे। पिताजी का दिल खूब दुःख पाया किन्तु वे बेचारे चुपचाप रह गये और बहन निराश होकर चली गयी। अब सुना है कि उन्होंने कहीं पर कुछ नौकरी कर ली है।"

"बेटी सुषमा! अपने शास्त्रों में तो स्पष्ट लिखा है कि पिता अपने धन का बंटवारा करते समय पुत्रों के समान ही पुत्रियों का भी हिस्सा अलग करे। देखो! आदिपुराण में कहा है कि–

पुत्र्यश्च संविभागार्हाः समं पुत्रः समांशकैः।
त्वं तु भूत्वा कुलज्येष्ठः संतति नोऽनुपालय।।

पुत्रों के समान पुत्रियों को भी बराबर भाग देना चाहिये। हे पुत्र! तू कुल का बड़ा होकर मेरी सब संतानों का पालन कर।"

बीच में ही कीर्ति बोल उठती है–"माताजी! इन सभी उदाहरणों से तो यही मालूम पड़ता है कि आज के युग में पुरातन सत्य परम्पराएँ समाप्त ही हो चुकी हैं।"

"हाँ, यह पंचमकाल का ही दुष्परिणाम है। प्रिय बालिकाओं! फिर भी तुम सभी को अपना इहलोक और परलोक सर्वोत्कृष्ट बनाने का ही पुरुषार्थ करना चाहिये। सुनो, तुम सब मिलकर महिला समाज को संगठित करो। दहेज प्रथा का विरोध पुत्रों की माताओं से कराओ, साहसपूर्वक धर्ममार्ग में दृढ़ रहो। अपने सम्यक्त्व की और शीलरत्न की रक्षा करके परलोक में स्त्रीपर्याय को जलांजलि दे दो। देवपूजा और गुरूभक्ति को अपना दैनिक कर्त्तव्य समझो। नित्य ही स्वाध्याय करो। घर में स्वस्थ और प्रसन्न वातावरण निर्मित करने के लिये अच्छी-अच्छी कथाओं को सुनाओ। स्वयं प्रसन्नचित्त रहकर सबको प्रसन्न रखो। ब्याह के बाद जिस घर में पहुँचो, उसे स्वर्ग सदृश बनाने की चेष्टा करो। कलह-अशांति को छोड़कर धर्म की रक्षा में रानी चेलना का उदाहरण सामने रखो। अपने पति को यदि श्रेणिक सदृश धर्मनिष्ठ न बना सको तो कम-से-कम आप उनके साथ अधार्मिक मत बनो।

तुम सभी बालिकाएँ अब मेरे पास में शीलव्रत और अष्टमूलगुण धारण करो और मिथ्यात्व का सर्वथा त्याग करो।

सभी बालिकाएँ नियम लेने के लिये मस्तक झुकाकर हाथ जोड़कर गवासन से बैठ जाती हैं। माताजी विधिवत् सबको नियम देकर अपना लेखन कार्य प्रारम्भ कर देती हैं।

सती द्रौपदी

हस्तिनापुर में पांडवों का शासन चल रहा था। प्रजा के लोग दुर्योधन आदि कौरवों के दुर्व्यवहार को भी भुला चुके थे। उस सुखद प्रसंग में नारद ऋषि यत्र तत्र विचरण करते हुए वहाँ पर आ गये। पाँचों पांडवों से मिलकर प्रसन्न हुए। पांडवों ने भी उनका बहुत ही आदर-सम्मान किया। अनन्तर नारदजी द्रौपदी के महल में पहुँचे। वह आभूषण-अलंकार आदि धारण करने में व्यग्र थी। नारदजी कब आये और कब चले गये, उसे इस बात का पता भी नहीं लग सका।

नारदजी द्रौपदी के इस व्यवहार को अपना अपमान समझकर क्रोध से जलने लगे। उन्होंने उसको दुःख देने का निश्चय किया और उपाय सोचने लगे। वे इसी धुन में हस्तिनापुर से निकल गये और आकाशगामिनी विद्या के बल से आकाशमार्ग से उड़ते हुए जम्बूद्वीप के बाहर लवणसमुद्र का उल्लंघन कर पूर्वधातकी खण्ड के भरतक्षेत्र में पहुँच गये। वहाँ पर अंगदेश में अमरकंकापुरी नगरी है। उसका राजा पद्मनाभ रूप और गुणों से प्रसिद्ध था। उसने नारद की बहुत ही विनय की पुनः उन्हें आत्मीयजन समझकर अपना अंतःपुर दिखाया और पूछने लगा–"हे नारद! हमारी सुन्दर स्त्रियों जैसा रूप कहीं अन्यत्र भी आपने देखा है क्या?"

उस समय नारद ने अपने अपमान का बदला चुकाने का एक अच्छा अवसर समझकर अर्जुन की पत्नी द्रौपदी के रूप की प्रशंसा करना शुरू कर दी और कहने लगे–"हे पद्मनाथ! उस महिला का लोकोत्तर सौंदर्य आपकी इन पत्नियों में से किसी का भी नहीं है।"

तब पद्मनाभ कामपिशाच के वशीभूत होता हुआ पूछता है–"हे ऋषे! वह कहाँ रहती है? किसकी पुत्री है? अथवा किसकी पत्नी है?"

नारद कहने लगे–"राजन्! जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में एक हस्तिनापुरी नगर है। वहाँ पर इस समय पाँच पांडव राज्य कर रहे हैं। उन पाँचों में जो बिचले भाई अर्जुन हैं जिनकी धनुर्विद्या की बराबरी इस मध्यलोक में आज कोई भी नहीं कर सकता है। यह सती द्रौपदी उन्हीं अर्जुन की भार्या है।"

इत्यादि रीति से नारद द्रौपदी का पता बतलाकर आप स्वयं आकाशमार्ग से चले गये। इधर राजा पद्मनाभ के हृदय में उसे प्राप्त करने की इतनी तीव्र

उत्कण्ठा जागृत हो गई कि उसे अब न भोजन-पान में रुचि रही, न नींद में ही। उसने तीव्र घोर तपश्चरण के द्वारा पाताल लोक में निवास करने वाले एक 'संगमक' नाम के देव की आराधना की। यह देव आकर राजा के कहे अनुसार अपने विक्रिया बल से रात्रि में सोती हुई द्रौपदी को उठाकर ले आया और इस धातकी खण्ड में राजा पद्मनाभ के बगीचे में छोड़ दिया और राजा को सूचना देकर आप अपने स्थान को चला गया।

राजा ने आकर साक्षात् देवांगना के समान सुन्दर द्रौपदी को देखा। द्रौपदी उस समय जागृत हो गयी थी किन्तु 'यह स्वप्न है' ऐसा समझकर वह पुनः सो गई। बार-बार वह जागृत होती और नया ही स्थान देखकर स्वप्न समझकर सो जाती। इस तरह नेत्रों को बन्द करने वाली द्रौपदी का अभिप्राय जानकर राजा पद्मनाभ उसके समीप में पहुँचा और मधुरवाणी में बोला–"हे सुन्दरी! उठो और देखो! यह धातकीखण्ड द्वीप है और मैं इस अमरकंकापुरी का राजा पद्मनाभ हूँ। नारद के द्वारा तुम्हारे रूप की प्रशंसा सुनकर मैंने देव की आराधना की थी अतः एक देव तुम्हें वहाँ से अपहरण कर यहाँ ले आया है।"

इतना सुनते ही द्रौपदी का हृदय काँपने लगा। वह आश्चर्यचकित हो सोचने लगी–"हाय! यह क्या हुआ? मेरे ऊपर यह भयंकर संकट कहाँ से आ पड़ा? अब यहाँ मेरा रक्षक कौन है?....."

पुनः तत्क्षण ही उसने अपने मन में यह नियम कर लिया कि जब तक मुझे अर्जुन का दर्शन नहीं होता, तब तक के लिये मेरे चतुराहार का त्याग है। इस प्रकार प्रतिज्ञा करके उसने अपनी वेणी में गाँठ लगा ली। अब वह अपने को शीलरूपी वज्रमय कोट के भीतर बैठी हुई समझने लगी।

पद्मनाभ ने जब उसे सोच-विचार में निमग्न देखा तब वह पुनः बोला–"हे देवि! अब नेत्र खोले और मेरी तरफ देखो। मैं तुम्हारे अधरामृत का इच्छुक हूँ। मेरी इच्छा को पूर्ण कर मेरे साथ मनमाने भोगों का अनुभव करो।"

तब द्रौपदी कहती है–"अरे मूर्ख! तुझे पता नहीं मैं कौन हूँ? मैं सती द्रौपदी हूँ। बलभद्र और श्रीकृष्ण नारायण मेरे भाई हैं। धनुर्धारी अर्जुन मेरा पति है। महान् बलशाली युधिष्ठिर और भीम मेरे पति के बड़े भाई हैं। नकुल तथा सहदेव मेरे देवर हैं। जल और स्थल में जिन्हें कहीं भी कोई रोक नहीं सकता ऐसे शीघ्रगामी उनके रथ समस्त पृथ्वी पर घूमते रहते हैं। इसलिये हे भाई! तू

यदि अपने परिवार सहित जीवित रहना चाहता है, तो मुझे शीघ्र ही मेरे स्थान पर वापस पहुँचा दे, अन्यथा तेरी खैर नहीं है।"

इस पर पद्मनाभ कहता है–"हे द्रौपदी! तुम अब होश में आओ और अपने भाई, पति आदि के अभिमान को छोड़ो। वे सब इस समय तुमसे कितने दूर हैं इसकी तुम्हें कल्पना भी नहीं है। अब तुम स्वप्न में भी उनसे मिलने की आशा छोड़ दो।"

द्रौपदी कहती है–"अरे दुष्ट! तू मुझे यहाँ अकेली और अनाथ मत समझ, मेरा रक्षक धर्म है, वह सदैव ही मेरे साथ रहता है। इतनी दूर भी वही मेरी रक्षा करेगा।"

राजा पद्मनाभ अनेक प्रकार से अनुनय-विनय करके भी जब द्रौपदी को अनुकूल नहीं कर सका, तब वह उसे अनेक प्रकार के भय दिखलाने लगा। जब द्रौपदी भयानक वातावरणों से और मरने से भी नहीं डरी, तब वह बलात्कार करने के लिये आगे बढ़ा। इस पर द्रौपदी ने कहा–"यदि एक महीने के अन्दर ही हमारे आत्मीयजन यहाँ नहीं आ जाते हैं तो तेरी जैसी इच्छा हो, वैसा करना।"

इस पर वह पद्मनाभ शान्त होकर घर चला गया और तब से प्रतिदिन अपनी स्त्रियों के साथ द्रौपदी को अनुकूल करने की चेष्टा करता रहा। द्रौपदी विश्वस्त हो गई। फिर भी स्वजन के वियोग में निरन्तर अश्रु बहाती हुई पति के आने की प्रतीक्षा करने लगी। पति के दर्शन तक उसने अन्न-जल का त्याग कर ही दिया था, अब वह महामन्त्र का सहारा लेकर अपने प्राणों को धारण कर रही थी।

इधर प्रातः द्रौपदी को न पाकर अर्जुन के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह सोचने लगा–"रात्रि में ही मेरी वल्लभा कहाँ चली गई? महल में अकस्मात् अदृश्य कैसे हो गई?"

अर्जुन ने यह समाचार अपने भाईयों को दिया। सुनकर सब स्तब्ध रह गये। अन्त में सभी ने यह निर्णय निकाला कि अवश्य ही द्रौपदी को कोई देव या दानव अपहरण कर कहीं ले गया है, जहाँ पर वह कष्ट में होगी। पाण्डवों ने वहाँ से चलकर श्रीकृष्ण के निकट आकर उन्हें भी यह समाचार सुनाया। इस आकस्मिक दुर्घटना से श्रीकृष्ण भी बहुत दुःखी हुए। उन्होंने पूरे भरतक्षेत्र

में अपने सेवकजनों को भेजकर पता लगवाया किन्तु कहीं पर भी द्रौपदी का पता नहीं लग सका। तब उन सभी यादवों ने यह निश्चय किया कि कोई दुष्ट विद्याधर मनुष्य अथवा देव उसका अपहरण कर कहीं अन्य क्षेत्र में ले गया है। फिर भी समस्त यादव उसकी खोज में तत्पर हो गये।

इसी बीच में एक दिन श्रीकृष्ण अपनी सभा में विराजमान थे कि नारदजी वहाँ आ गये। समस्त यादवों ने उनका सम्मान किया। नारद कहने लगे– "हे नारायण! मैंने द्रौपदी को धातकीखण्ड द्वीप की अमरकंकापुरी में राजा पद्मनाभ के उद्यान में देखा है। वह स्वजन वियोग के शोक से अत्यन्त दुर्बल हो गयी है। निरन्तर अश्रुओं से अपना मुख धोती रहती है। उसे इस समय अपने शीलव्रत का ही सबसे बड़ा भरोसा है। पद्मनाभ के अन्तःपुर की स्त्रियाँ यद्यपि उसकी सेवा में लगी हुई हैं, किन्तु वह लम्बी-लम्बी श्वास छोड़ती रहती है। आप जैसे भाई के रहते हुए वह शत्रु के घर में क्यों रह रही है? आप उसको शीघ्र ही शत्रुओं से छुड़ाकर यहाँ लाओ।"

नारद ऋषि से प्रिय समाचार सुनकर श्रीकृष्ण आदि सभी लोग बहुत ही प्रसन्न हुए और नारद की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। पुनः वे बोले–"वह दुष्ट राजा द्रौपदी का अपहरण कर कहाँ जावेगा? मैं अभी उसे यमराज के घर भेज दूँगा।"

इत्यादि शब्दों से शत्रु के प्रति रोष व्यक्त करते हुए श्रीकृष्ण द्रौपदी को लाने के लिए रथ पर बैठकर दक्षिण समुद्र के तट पर जा पहुँचे। पाँचों पाण्डव भी वहाँ पहुँच गये। वहाँ पर इन लोगों ने धातकीखण्ड को जाने की इच्छा से लवण समुद्र के अधिष्ठाता देव की आराधना की। देव ने आकर छह रथ लाकर पाँचों पाण्डवों और श्रीकृष्ण को उनमें बिठा दिया। ये छहों जन शीघ्र ही लवण समुद्र पार कर धातकीखण्ड के भरत क्षेत्र की अमरकंकापुरी के उद्यान में पहुँच गये और वहाँ के पुरुषों से पद्मनाभ को खबर भेज दी कि श्रीकृष्ण और पाण्डव आ गये हैं।

पद्मनाभ की सेना युद्ध के लिये आ गई। पाँचों पाण्डवों ने उस सेना को इतना मारा कि वह तहस-नहस होकर नगर में भाग गई। पद्मनाभ नगर का गोपुर द्वार बन्द कर महल में घुस गया। तब श्रीकृष्ण ने अपने पैरों के आघात से उस वज्र के फाटक को तोड़ना शुरू किया। उनके पैरों के प्रहार से शहर का परकोटा और गोपुर द्वार टूट-टूटकर गिरने लगे। मदोन्मत्त हाथी इधर-उधर

भागने लगे। नगर में सर्वत्र हाहाकार मच गया। तब राजा पद्मनाभ घबराकर द्रौपदी की शरण में पहुँचा और कहने लगा–"हे मातः! हे पतिव्रते! हे शीलशिरोमणि! मेरी रक्षा करो। मेरे अपराध को क्षमा करो, क्षमा करो, मुझे अभयदान दिलाइये।"

द्रौपदी को करुणा आ गई तब उसने कहा–"हे भाई! तुम स्त्री का वेश धारणकर चक्रवर्ती श्रीकृष्ण की शरण में जाओ तो वे अवश्य ही तुम्हें छोड़ देंगे। उत्तम पुरुष अपराधी जनों को भी नम्र हो जाने पर छोड़ देते हैं पुनः भीरू स्त्री का वेश धारण करने पर तो वे अवश्य ही दया करेंगे।"

इतना सुनकर राजा पद्मनाभ स्त्री का वेश धारणकर अपनी स्त्रियों को साथ लेकर द्रौपदी को आगे किया और श्रीकृष्ण की शरण में आ पहुँचा। तब श्रीकृष्ण ने शरणागत को अभयदान देकर मात्र उसके स्थान और नाम में परिवर्तन कर दिया और उसे वापस भेज दिया।

द्रौपदी ने श्रीकृष्ण के चरणों में प्रणाम किया और पाँचों पाण्डवों के साथ यथायोग्य विनय व्यवहार किया। तदनन्तर अर्जुन ने विरह से दुःखी अपनी वल्लभा का आलिंगन कर अपने हाथों से उसकी वेणी खोलकर उसकी प्रतिज्ञा को पूर्ण किया। द्रौपदी ने भी पति को और स्वजनों को प्राप्त कर हर्ष के साथ अपना पुनर्जन्म माना पुनः सबने स्नान आदि से निवृत्त होकर भोजन किया तब द्रौपदी ने भी भोजन ग्रहण किया।

अनन्तर वे सभी रथ में बैठकर समुद्र के किनारे आ गये। तब श्रीकृष्ण ने अपना शंख बजाया। उसकी ध्वनि समस्त दिशाओं में व्याप्त हो गई। उस समय वहाँ चम्पानगरी के बाहर जिनेन्द्रदेव का समवसरण स्थित था। धातकीखण्ड के भरतक्षेत्र के नारायण कपिल श्री जिनेन्द्रदेव की वन्दना करने वहाँ आये थे। उन्होंने पृथ्वी को कम्पित कर देने वाला वह शंखनाद सुना, तब भगवान से पूछा–"हे नाथ! मेरे समान शक्ति को धारण करने वाले किस मनुष्य ने यह शंख बजाया है? इस समय मेरे द्वारा शासित इस भरतक्षेत्र में मेरे समान तो कोई अन्य मनुष्य है नहीं?"

भगवान की दिव्य ध्वनि खिरी। गणधर ने समझाया–"राजन्! जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के नारायण श्रीकृष्ण यहाँ आये हुए हैं। अमरकंकापुरी के राजा पद्मनाभ ने अर्जुन की पत्नी द्रौपदी का अपहरण कराया था। उसी को लेने के

लिए पाँडव और श्रीकृष्ण यहाँ आये हुए हैं।"

इतनी बात सुनकर कपिल नारायण श्रीकृष्ण से मिलने के लिए जाने लगा। यह देख श्री गणधर ने कहा–"हे राजन्! तीन लोक में कभी भी चक्रवर्ती-चक्रवर्तियों का, तीर्थंकर-तीर्थंकरों का, बलभद्र-बलभद्रों का, नारायण-नारायणों का और प्रतिनारायण-प्रतिनारायणों का परस्पर में मिलाप नहीं होता है। तुम जाओगे तो चिह्नमात्र से ही तुम्हारा और उसका मिलाप हो सकेगा। एक-दूसरे के शंख का शब्द सुनना तथा रथों की ध्वजाओं को देखना, इन्हीं चिह्नों से तुम्हारा और उसका साक्षात्कार हो सकेगा।

कपिल नारायण भगवान की वाणी के अनुसार समुद्र तट पर आया। तब तक श्रीकृष्ण अपने रथों को समुद्र में उतार चुके थे अतः दूर से ही अर्ध-चक्री कपिल ने श्रीकृष्ण के रथ की ध्वजा को देखा पुनः अपनी चम्पानगरी में वापस चले आये। इधर आकर चक्रवर्ती कपिल ने अनुचित कार्य में प्रवृत्त होने वाले राजा पद्मनाभ को बहुत ही फटकारा। इधर ये पाँचों पाँडव, श्रीकृष्ण और द्रौपदी सभी लोग महासमुद्र को पार कर तट पर आ गये।

द्रौपदी ने अपने शील की दृढ़ता से अन्य द्वीप में भी अपना साहस नहीं छोड़ा। सच है, महिलाओं के लिए शीलव्रत ही सर्वश्रेष्ठ व्रत है।

ब्राह्मी-चन्दनबाला जैसी, छवि जिनमें दिखती रहती।
कुन्दकुन्द गुरुवर सम जिनकी, सतत लेखनी है चलती।।
नारी ने भी नर के सदृश, अपनाई चर्या यति की।
मेरा शत वंदन स्वीकारो, गणिनी माता ज्ञानमती।।

–आर्यिका चंदनामती

महारानी केकसी

महारानी केकसी अपने राजमहल में सोयी हुई हैं। रत्नों के दीपकों का प्रकाश फैल रहा है। चारों ओर पहरे पर खड़ी हुई स्त्रियाँ निद्रा रहित होकर महारानी की रक्षा में तत्पर हैं। पिछली रात्रि में रानी आश्चर्यकारी कुछ स्वप्नों को देखती हैं। प्रभात के समय तुरही की ध्वनि से और चारण लोगों के प्रभाती पाठ से जग जाती हैं। प्रभात की मंगल-बेला में महामन्त्र का स्मरण कर शय्या का त्याग कर देती हैं। प्राभातिक क्रिया से निवृत्त होकर माँगलिक वेषभूषा धारण कर राजा रत्नश्रवा के पास पहुँचकर निवेदन करती हैं–"हे नाथ! मैंने आज रात्रि के पिछले प्रहर में तीन स्वप्न देखे हैं। आपके श्रीमुख से उनका फल सुनना चाहती हूँ।"

राजा कहते हैं–"कहिये, रानी! वे स्वप्न क्या-क्या हैं?"

रानी कहती हैं–"राजन्! पहले स्वप्न में मैंने देखा है कि अपने उत्कृष्ट तेज से हाथियों के बड़े भारी झुण्ड को विध्वस्त करता हुआ एक सिंह आकाशतल से नीचे उतरकर मुख द्वार से मेरे उदर में प्रविष्ट हुआ है। दूसरे स्वप्न में देखा है कि अपनी हजारों किरणों से काले-काले अंधकार को दूर हटाता हुआ सूर्य आकाश के मध्य भाग में स्थित है और तीसरे स्वप्न में देखा कि अत्यन्त सौम्यपूर्ण चन्द्रमा मेरे सम्मुख स्थित है। इन स्वप्नों के देखने से मेरा मन आश्चर्य से भर गया है। सो हे देव! इनका क्या फल है?"

केकसी के स्वप्नों को सुनकर राजा रत्नश्रवा अपने अष्टांग निमित्तज्ञान से इन स्वप्नों के फलों का विचार करते हैं पुनः कहते हैं–"हे प्रिये! हे सुमुखि! इन स्वप्नों से यह विदित हो रहा है कि तुम्हारे तीन पुत्र होंगे जो अपनी कीर्ति से तीनों लोकों को व्याप्त करेंगे। महा-पराक्रम के धारी तथा कुल की वृद्धि करने वाले होंगे। वे कांति में चन्द्रमा के समान होंगे। अपने तेज से सूर्य को तिरस्कृत करने वाले होंगे और उन्हें देव भी पराजित नहीं कर सकेंगे। वे चक्रवर्तियों के समान ऋद्धि के धारक और महादानी होंगे। उनका वक्षस्थल श्रीवत्स के चिह्न से सुशोभित होगा।

उन तीनों पुत्रों में प्रथम पुत्र साहस के कार्य में अग्रणी होगा और युद्ध का अत्यधिक प्रेमी होगा। वह घोर भयंकर कार्यों का भण्डार होगा तथा जिस कार्य को करने की सोच लेगा इन्द्र भी उससे उसे परामुख नहीं कर सकेगा।"

पति के ऐसे वचनों को सुनकर रानी केकसी अतिशय प्रमोद को प्राप्त हो जाती है पुनः एक क्षण कुछ सोचकर पूछती है–"नाथ! हम दोनों का चित्त तो जिनमतरूपी अमृत के आस्वाद से अत्यन्त निर्मल है फिर हम लोगों के जन्म प्राप्त कर यह पुत्र क्रूरकर्मी कैसे होगा? निश्चय से हम लोगों की मज्जा भी तो जिनेन्द्र भगवान के वचनों से संस्कारित है। फिर हमसे ऐसा पुत्र का जन्म कैसे होगा? क्या कहीं अमृत की बेल से विष की उत्पत्ति हो सकती है?"

इसके उत्तर में राजा कहते हैं–"हे कल्याणि! इस कार्य में जीवों के पूर्वकृत कर्म ही कारण हैं, हम नहीं। संसार के स्वरूप की योजना में कर्म ही मूल कारण होते हैं, माता-पिता तो निमित्त मात्र हैं।"

इसके दोनों छोटे भाई जिनमार्ग के पंडित, गुणों के समूह से व्याप्त, उत्तम चेष्टाओं के धारक तथा शील के सागर होंगे। संसार में कहीं मेरा स्खलन न हो जाये, इस भय से वह सदा पुण्य कार्य में अच्छी तरह संलग्न रहेंगे। सत्यभाषी होंगे और जीवदया में तत्पर रहेंगे। हे प्रिये! उन दोनों पुत्रों का पूर्वोपार्जित पुण्य ही उनके इस स्वभाव का कारण होगा, सो ठीक ही है क्योंकि कारण के समान ही फल होता है।"

इतना कहकर राजा रत्नश्रवा रानी केकसी को साथ लेकर विशेष उत्सवपूर्वक जिनेन्द्रदेव की पूजाविधि सम्पन्न करते हैं।

अनन्तर गर्भ में बालक के आने के बाद माता की चेष्टा अत्यन्त क्रूर हो जाती है। वह हठपूर्वक पुरुषों के समूह को जीतने की इच्छा करती है। वह चाहती है कि मैं खून से लिप्त तथा छटपटाते हुए शत्रुओं के मस्तक पर पैर रखूँ। देवराज इन्द्र के ऊपर भी आज्ञा चलाऊँ। बिना कारण ही उसका मुख हुँकार से मुखर हो जाता है। उसका शरीर कठोर हो जाता है। उसकी वाणी कर्कश हो जाती है और उसका दृष्टिपात भी निःशब्द होने से स्पष्ट दिखता है। दर्पण रहते हुए भी वह तलवार में अपना मुख देखती है। गुरूजनों की वंदना में उसका मस्तक बड़ी कठिनाई से झुकता है।

नवमास व्यतीत होने के बाद महातेजस्वी बालक जन्म लेता है। सूर्य के समान बालक के तेज को देखकर प्रसूतिगृह में कार्य करने वाली महिलाओं के नेत्र चक्कर खाने लगते हैं। भूतजाति के देव दुंदुभि बाजे बजाने लगते हैं और शत्रुओं के घरों में सिर रहित धड़ से उत्पातसूचक नृत्य करने लगते हैं।

तदनन्तर पिताजी पुत्र का जन्मोत्सव बहुत भारी रूप में मनाते हैं। वह बालक प्रसूतिका गृह में शय्या के ऊपर पड़ा हुआ मन्द-मन्द हँस रहा है और लीला से समीपवर्ती भूमि को कंपित कर रहा है।

कई पीढ़ियों पहले राक्षसों के इन्द्र भीम ने राजा मेघवाहन के लिए जो दिव्य हार दिया था जिसकी हजार नागकुमार देव रक्षा कर रहे थे, जिसकी दिव्य किरणें चारों तरफ फैल रही थीं और जिसे इतने दिनों तक राक्षसों के भय से किसी ने भी नहीं पहना था, वह हार वहीं पर एक स्थान पर रखा हुआ था।

वह जन्मजात बालक अनायास ही उस हार को अपने हाथों से खींच लेता है। बालक को मुट्ठी में हार लिए देख माता घबड़ाने लगती है और बड़े स्नेह से उसे उठाकर गोद में ले लेती है पुनः यह आश्चर्य देख माता उस हार को लेकर निर्भय होकर बालक के गले में पहना देती है। उस समय वह हार अपनी किरणों से दसों दिशाओं को प्रकाशित कर रहा है। उस हार में बड़े-बड़े स्वच्छ रत्न लगे हुए हैं। उनमें बालक के असली मुख के साथ-साथ नव मुख और भी प्रतिबिम्बित हो उठते हैं। इस दृश्य को देखकर बालक का नाम दशानन रखा जाता है।

पिता रत्नश्रवा बालक को हार पहने हुए देखकर आश्चर्य के साथ-साथ हर्षसागर में निमग्न हो जाते हैं। वह कहते हैं–"अवश्य ही यह कोई महापुरुष होगा। यदि इसकी शक्ति लोकोत्तर न होती तो भला नागेन्द्रों के द्वारा सुरक्षित ऐसे हार को इस लीलामात्र में कैसे ग्रहण कर लेता? चारण-ऋद्धिधारी मुनिराज ने भी एक बार यही बात बतलाई थी कि तुम्हारे कुल में कोई चक्रवर्ती महापुरुष होगा और उसकी पहचान यही होगी कि वह राक्षस के इन्द्र भीम के द्वारा दिये हुए दिव्य हार को जन्म लेते ही हाथ से उठा लेगा। भला क्या महामुनियों के वचन असत्य हो सकते हैं?"

दशानन के बाद कितना ही समय बीत जाने पर रानी केकसी एक और पुत्ररत्न को जन्म देती है। उसका नाम भानुकर्ण रखा जाता है। उसके बाद एक पुत्री का जन्म होता है जिसको चन्द्रनखा नाम से सम्बोधित करते हैं। अनन्तर तीसरे पुत्र का जन्म होने पर उसका नाम विभीषण रखा जाता है।

तेजस्वी दशानन की बालक्रीड़ाएँ भी भयंकर रहती हैं, किन्तु दोनों छोटे भाईयों की बालक्रीड़ाएँ शत्रुओं को भी आनन्द पहुँचाने वाली होती हैं। भाईयों

के बीच खेलती हुई चन्द्रनखा कन्या ऐसी सुशोभित होती है मानों दिन सूर्य और चन्द्र के बीच उत्तम कांति से युक्त संध्या ही हो।

किसी समय कैलाश पर्वत को उठाकर फेंकने की चेष्टा करते समय उसके नीचे दबकर जोरों से रुदन करने से दशानन का नाम 'रावण' प्रसिद्ध हो जाता है। एक समय भानुकर्ण के श्वसुर के ग्राम कुम्भनगर में शत्रुओं का हमला हो जाने पर भानुकर्ण द्वारा रक्षा करने से उनका कुम्भकर्ण नाम भी प्रख्यात हो जाता है। ये कुम्भकर्ण बहुत ही सात्त्विक प्रकृति के महामानव थे। जिनपूजन और गुरूभक्ति प्रतिदिन करने का इनका नियम था, ऐसा पद्मपुराण (जैन रामायण) में माना गया है। बहन चन्द्रनखा खरदूषण विद्याधर की रानी हुई है। इनका दूसरा नाम सूर्पणखा भी लोक में प्रसिद्ध है।

यहाँ पर यह बात विशेष विचारणीय है कि माता-पिता पूर्ण धर्मनिष्ठ होते हुए भी यदि कदाचित् सन्तान में कोई दुर्व्यसन आ जाते हैं तो उसके लिए माता-पिता दोषी नहीं हैं प्रत्युत् उनकी सन्तान के पूर्वसंचित पाप-कर्मों का उदय ही कारण है। कभी-कभी माता-पिता की असुरक्षा, असावधानी भी सन्तान के बिगड़ने का कारण बन जाती है अतः सर्वथा एकान्त नहीं समझना चाहिये। प्रत्युत् माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे सन्तान को सुसंस्कारित करने का सत्प्रयत्न करते रहें, उन्हें कुसंगतियों से, गलत वातावरण से बचाते रहें।

त्याग-तपस्या की मूरत तुम, ज्ञान-ध्यान की प्रतिमा हो।
कलियुग की सुकुमार तपस्वी, नारी की गुणगरिमा हो।।
ब्राह्मी माँ के पद चिन्हों पर, चलकर लुटा रहीं चंदन।
गणिनी माता ज्ञानमती जी, स्वीकारो मेरा वंदन।।

—आर्यिका चंदनामती

जैन हर्बल्स कंपनी-मुम्बई द्वारा उत्पादित अहिंसक प्रसाधन सामग्री

अहिंसक पदार्थों की श्रृंखला में एक अन्य नाम है 'वनौषधियों' का, जिनका उत्पादन डॉ. उर्जिता जैन (एम.डी.)-मुम्बई द्वारा संचालित 'वनौषधि केन्द्रों' में किया जा रहा है। स्वास्थ्य एवं सौंदर्य के क्षेत्र में पूर्णतया वनस्पति आधारित इन अहिंसक पदार्थों की लिस्ट यहाँ प्रस्तुत है, ताकि सुधीपाठक इन प्रतिदिन काम आने वाली वस्तुओं के प्रयोग से अपने अहिंसा व्रत को संरक्षित रख सकें।

शाश्वत सौंदर्य का सदियों पुराना राज बालों की देखभाल

जास्वंद जेल (बालों की देखभाल के लिए)–यह शुद्ध जेल ताजे, प्राकृतिक जास्वंद फूलों के संयुक्त तत्त्व से बना है जिसमें बालों की देखभाल करने वाली अन्य वनौषधियाँ भी हैं। बालों के गिरने की शुरुआत होते ही या बालों का जगह-जगह कम होना देखते ही इस्तेमाल शुरु करें। यह बालों का उगाना तेज करता है। बालों को नर्म-मुलायम, स्वस्थ एवं संवारने योग्य बनाता है। सिर की त्वचा को गर्मी से राहत देता है। रुसी, सर की त्वचा के दूषण, तथा समय पूर्व बालों को पकने से रोकता है।

हेरोमा (अरोमा केश तेल)–सुंदर बालों के लिए यह 100 प्रतिशत कुदरती केश तेल अरोमाथेरपि तेलों से युक्त है। यह तिल तेल, बादाम, व्हीटजर्म तेल, जेरॅनियम, रोजमेरी, मोतिया रोशा इत्यादि तेलों का एक सुंदर मिश्रण है। यह सुगंधी, चिपचिपारहित है और बालों को झड़ने से रोककर सुंदर बनाता है।

केशिका (बाल धोने के लिए)–बालों को धोने का 100 प्रतिशत प्राकृतिक उपाय। शैम्पू और साबुन का उत्तम पर्याय, इसमें कोई भी रासायनिक द्रव्य नहीं। शिकाकाई, रिठा, क.सुगंधी और संतरा छाल से युक्त।पुरुष और महिलाओं द्वारा नियमित उपयोग के लिए आदर्श, बस पानी मिलाकर पेस्ट बनाइए, लगाइए और सिर की त्वचा पर मालिश करके धो डालिए। बालों में कुदरती चमक-दमक और उछाल आ जायेगा।

ट्रायडॉफ (बालों में डेंड्रफ होना)–यह सिर की त्वचा की कोमलता से सफाई करे, मृत त्वचा को अलग करे। जलन और संक्रमण से बचाये। सिर की त्वचा की अतिरिक्त गर्मी मिटाये। अेलो वेरा जेल (पतला) के साथ पेस्ट बनाइए। सिर की त्वचा पर धीरे-धीरे मालिश कीजिए। 20 मिनिट बाद धो डालिए। बाल नर्म-मुलायम, रेशमी और डैंड्रफ (रूसी) से मुक्त हो जायेंगे। सप्ताह में दो-बार, सिर धोने से पहले इस्तेमाल करें। उम्र चाहे जो हो।

न्यू क्रॉप (केश वर्धक)–जास्वंद, ब्राह्मी, कुलिंजन, जटामांसी जैसी वनौषधियाँ बालों का गिरना रोकती है। नये स्वस्थ बालों को उगाने में सहायता देती है। रूसी से बचाता है। बालों की जड़ों को नया जीवन देता है। अेलो वेरा जेल (पतला) में पेस्ट बनाकर मस्तिष्क पर मालिश

कीजिए। 20 मिनिट बाद धो डालिए। बीमारी आदि या प्रसूती की वजह से अचानक गिरते बालों को रोकता है।

ग्रेनिल (सफेद बालों के लिए)–सफेद बालों के लिए 100 प्राकृतिक उपाय। कुदरती वनौषधियाँ, जैसे आंवला, मेहंदी, जास्वंद, इंडिगो तथा सोफिया तेल से निर्मित। ये सिंथेटिक हेयर डाइ में पाये जानेवाले हानिकारक रसायनों से मुक्त है। बालों का गिरना रोकता है। बालों को मुलायम बनाता है तथा बालों को समय से पहले सफेद होने से बचाता है।

त्वचा की देखभाल

हर्बोलेप (उबटन)–इसमें उबटन है, जो भारत में प्राचीन काल से त्वचा को निखारने, उसे नया जीवन देने और रक्त संचार को सुधारने के लिए प्रयोग में लाया जाता रहा है। इसकी पानी में बनाई पेस्ट को चेहरे व शरीर पर लगाइए, कुछ समय तक मलिए, और फिर पानी से धो डालिए। नर्म, मुलायम और सुंदर त्वचा के लिए, रोजाना नहाने से पहले इस्तेमाल करें।

लेपैक ओ एण्ड डी (चेहरे की निगरानी)–तैलीय व शुष्क त्वचा के लिए फेस पैक, लेपैक-ओ, नीम तथा मुलतानी मिट्टी युक्त है जो गंदगी व मृत कोशिकाओं को साफ करता है। तैलीय गाठों को बंद करता है तथा तैलीय त्वचा को पुनर्जीवित करता है। लेपैक-डी, गुलाब तथा चंदन युक्त है जो शुष्क त्वचा को कोमल, स्वस्थ बनाकर रौनक देता है, पानी से पेस्ट बनाइए। 20 मिनिट तक लगाइए, फिर धो डालिए।

तेजस (तेजस्वी चेहरा)–खुरदरी और बेजान त्वचा से कहिए अलविदा, अश्वगंधा, चंदन तथा हल्दी त्वचा के रोम छिद्रों को खोलें। त्वचा की गंदगी और धूल को बाहर निकालें। बेजान त्वचा को दे रौनक और चेहरे पे लाए प्रकृतिक निखार। पानी में पेस्ट बनायें,चेहरे पर यह पेस्ट लगाकर धीरे-धीरे मालिश करें। 20 मिनिट तक लगाइए, फिर धो डालिए।

फेअरकॉम (गोरी त्वचा)–गुलाब, नीम, पपया, काकड़ी जैसी वनौषधियाँ त्वचा पर बड़ी कोमलता से असर करती हैं तथा आपका धीरे-धीरे ही सही, पर निश्चित तौर पर, रंग निखारती हैं। सप्ताह में दो बार, तीन महिने तक इस्तेमाल कीजिए। इसमें कोई हानिकारक रसायन, ब्लीच नहीं है। रंग निखारने का यह बड़ा ही सुरक्षित उपाय है। पानी में मिलाकर यह पेस्ट त्वचा पर लगायें तथा 20 मिनिट बाद धो डालें।

सतेज (चेहरे के दाग के लिए)–अेलो, पपया, अंबा हल्दी तथा गुलाब आपके चेहरें से दाग-धब्बों को बड़ी ही कोमलता से, बिना नुकसान पहुँचाए, दूर करते हैं। आपके रंग-रूप को बेदाग, रौकनदार रखते हैं। पानी से पेस्ट बनाकर प्रभावित हिस्सों पर लगाइए। 20 मिनिट तक लगाये रखें व धीरे-धीरे मालिश करें, फिर पानी से धो डालें।

पिंप्लॉर (मुँहासों के लिए)-अर्जुन, पपया, जामुन, लाल चंदन, मंजिष्ठा जैसी वनौषधियाँ हैं जो कीटाणुओं का नाश करके त्वचा को साफ-सुथरा रखती हैं। ये असरदार वनौषधियाँ आपकी त्वचा के रंध्रों को खोल देती हैं। आपको सिर्फ इतना ही करना है कि पानी में पेस्ट बनाकर प्रभावित हिस्सों पर लगाना है। 20 मिनिट बाद धो डालें।

कुकुंबर जेल (त्वचा निखार)–बिल्कुल ताजा और खास किस्म की ककड़ियों से निर्मित। बिना किसी रसायन या घोलक की प्रक्रिया से बना। चेहरे व त्वचा की कोमलता की हिफाजत करें। इसका उपयोग सौंदर्य उत्पादनों, स्किन टॉनिक, फेस पैक में किया जा सकताहै। त्वचा उचटने व दाद आदि के दागों पर उपयोगी है। नियमित उपयोग से मुहांसे, दाग-धब्बे, झुर्रियां व चेहरे की शुष्कता जाती रहती है। लू लगने पर भी उपयोगी है। रंग रूप को निखारती है।

अॅलो वेरा/कुकुंबर जेल (100/500 ग्राम)–यह एक नया, विकसित फॉर्म्युला विशेष रूप से सौंदर्यतज्ञ और बड़े परिवारों को इस्तेमाल करने के लिए बनाया गया है। बड़ी बोतल होने से उँगलीयोंसे या चम्मच से आसानी से इसे निकाल सकते हैं। इस फॉर्म्युला में नया और उत्तम गाढा द्रव इस्तेमाल किया है।

डोनाकेयर (हर्बल केश जेल)–डोनाकेयर हेयर जेल यह केश्य वनौषधि और बालों के लिए उपयुक्त ऐसे अरोमाथेरपि तेलोंसे बनाया है। बाल गिरना, बालों में रूसी, असमय बाल सफेद होना रोककर बालों की त्वचा में खून का सप्लाय बढ़ाता है और केशग्रंथी को उत्तेजित कर उन्हें कार्यरत करता है।

अॅलो वेरा जेल-वी (त्वचा की सुरक्षा)–यह जलने, झुलसने, सिर की त्वचा की गर्मी, हाथ-पैरों के फटने, कीटकों को काटने तथा डंक मारने, जूता लगने व नैपी खरोंचो के लिए बेमिसाल है। इसके झुर्रियारोधी गुणों के कारण इसे आदर्श सौंदर्य उपचार माना जाता है।यह खरोंचों के निशान मिटा देता है। यह पुरुषों के लिए भी आफ्टर शेव जेल के रूप में उपयुक्त है। इसमें एन्टीएजिंग गुणधर्म भी हैं।

अॅलो वेरा जेल लिक्वीड (पातळ)–प्राकृतिक मॉइश्चराइजर, यह त्वचा से धूल, चिकनाई, पसीना, भद्दा मेकअप आदि साफ करने में सहायता करता है। आँखों के इर्द-गिर्द भी बेसाख्ता इस्तेमाल किया जा सकता है। सोने से पहले रोजाना इस्तेमाल करें। नाक, ठुड्डी, गर्दन व कान की जुड़वा जगहों पर विशेष ध्यान दें। बालों के फॉर्म्युले में इसका इस्तेमाल पेस्ट बनाने के लिए किया जाता है।

कोमल (बेबी मसाज ऑइल)–नर्म-मुलायम, पोषक और गुणकारी बेबी ऑईल, जो शिशु की त्वचा को स्वस्थ और कोमल बनाए रखे। कोमल में है लॅवेंडर, जो आराम की नींद लाए। बादाम और व्हीटजर्म त्वचा के लिए टॉनिक का और जोजोबा कैरियर (वाहक) का काम करे। तो हर दिन अपने शिशु को थोड़े से कोमल से मालिश कीजिए और अपने मुन्ने को स्वस्थ-तंदुरुस्त व हंसता-मुस्कराता रखिए।

जास्वंद केश तेल (हर्बल केश तेल)–केशवर्धक वनौषधीयों से युक्त यह एक खुशबूदार केश तेल है। जिनके बाल रूखे एवं पतले हैं उनके लिए लाभदायक है। रात को बालों को मसाज करने के लिये एक आदर्श केशतेल है। असमय बाल सफेद होना, झड़ना और रुसी से बचने के लिए उपयुक्त।